३५

अद्भुत आलाप

संपादक

सर्वप्रथम देव-पुरस्कार-विजेता

श्रीदुलारेलाल

(सुधा-संपादक)

Approved as Supplementary Reader for Class VIII in U. P.

गंगा-पुस्तकमाला का पैंतालिसवाँ पुष्प

अद्भुत आलाप

(आश्चर्य-जनक एवं कौतूहल-वर्द्धक निबंधों का संग्रह)

लेखक
महावीरप्रसाद द्विवेदी

मिलने का पता—
गंगा-ग्रंथागार
३६, लाटूश रोड
लखनऊ

पंचमावृत्ति

सजिल्द १।।)] सं० २००२ वि० [सादी १)



पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी

निवेदन

(प्रथम संस्करण पर)

इस संग्रह में २१ लेख हैं। कुछ पुराने हैं, कुछ थोड़े ही समय पूर्व के लिखे हुए हैं। जो पुराने हैं, वे पुराने होकर भी पुराने नहीं। एक तो भूली हुई पुरानी बात भी सुनने पर नई मालूम होती है। दूसरे, इस पुस्तक में जिन विषयों या बातों का उल्लेख है, उनमें से अधिकांश पुरानी हो ही नहीं सकतीं। जिन विषयों का समावेश इसमें है, वे प्रायः सभी आश्चर्य-जनक, अतएव कौतूहल-वर्द्धक हैं। इस कारण, और कामों से छुट्टी मिलने पर, मनोरंजन की इच्छा रखनेवाले पुस्तक-प्रेमी इसके पाठ से अपने समय का सद्व्यय कर सकते हैं; और संभव है, इससे उन्हें कुछ नई बातें भी मालूम हो जायँ। इसका लेख नंबर ७ पंडित मधुमंगल मिश्र का लिखा हुआ है।

८ अॉक्टोबर, १९२४ } महावीरप्रसाद द्विवेदी

निवेदन

(द्वितीयावृत्ति पर)

सी० पी० के हाईस्कूलों के कोर्स में पूज्यपाद द्विवेदीजी की इस सुंदर रचना को रख देने के लिये हम वहाँ की टेक्स्ट-बुक-कमेटी को धन्यवाद देते हैं, और अन्यान्य प्रांतों की टेक्स्ट-बुक-कमेटियों और

अन्यान्य शिक्षा-संस्थाओं से प्रार्थना करते हैं कि वे भी इसे मिडिल या इंट्रेंस के लिये मनोनीत करें।

लखनऊ
१७ । ७ । २१ } दुलारेलाल

निवेदन

(तृतीयावृत्ति पर)

हर्ष की बात है, हमारे द्वितीय संस्करण के निवेदन के अनुसार यू० पी० की टेक्स्ट-बुक-कमेटी ने इस पुस्तक को अँगरेज़ी स्कूलों की आठवीं कक्षा के लिये मनोनीत किया है। क्या अन्य प्रांतों की टेक्स्ट-बुक-कमेटियाँ, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, दक्षिण भारतीय हिंदी-प्रचार-सभा और भिन्न भिन्न प्रांतों के गुरुकुल आदि भी ऐसा ही करने की कृपा करेंगे? मनोरंजक होने के अतिरिक्त हिंदी के सर्वश्रेष्ठ गद्य-लेखक, आचार्य द्विवेदीजी महाराज की ललित लेखनी द्वारा लिखी हुई होने के कारण यह पुस्तक बालकों को हिंदी भाषा सिखलाने के लिये अद्वितीय सिद्ध हुई है।

कवि-कुटीर
१ । ५ । २४ } दुलारेलाल

वक्तव्य

[पंचमावृत्ति पर]

अद्भुत आलाप की कुछ ही वर्षों में हम ५वीं आवृत्ति निकाल सकेंगे, इसकी हमें स्वप्न में भी आशा न थी। इसे हिंदी-संसार तथा शिक्षा-संस्थाओं ने ख़ूब अपनाया, इसके लिये हम कृतज्ञ हैं।

हिंदी-भाषा-भाषी संसार में पुस्तकों की खपत ख़ूब बढ़ रही है, किंतु

हमारे रईस भाइयों की दिलचस्पी अभी इस ओर कम है। इसलिये हिंदी-संसार में अच्छी मौलिक पुस्तकों का अब भी अभाव ही-सा है। हमारी प्रसिद्ध प्रकाशन-संस्थाएँ अधिकतर बँगला, अँगरेज़ी और अन्य भाषाओं के अनुवाद ही छापती रही हैं। मौलिक पुस्तकें यदि हिंदी में गिनी जायँ, तो १०००-१५०० से ज़्यादा न होंगी। हमने स्वयं १५-२० वर्षों में विविध विषयों पर ५०० मौलिक पुस्तकें निकालने का सफल प्रयत्न किया, जिसमें से आजकल १५० पुस्तकें अप्राप्य हैं। उन्हें छापने के लिये काग़ज़ चाहिए, जो गवर्नमेंट की कृपा से परिमित मात्रा में ही मिल रहा है। यदि हिंदी-भाषा-भाषी रईस चाहें, तो अपना-अपना सहयोग देकर सुंदर साहित्य के निर्माण में हमारा हाथ बँटा सकते हैं। हमारे पास सैकड़ों सुंदर, मौलिक ग्रंथ—स्त्री-पुरुष, बालक-बालिकाओं के लिये उपयोगी—छापने को हैं, जिन्हें धनी-मानी व्यक्ति निकलवा सकते हैं। वे अपने नाम से या अपने प्रिय के नाम से पुस्तकमालाएँ भी निकलवा सकते हैं।

इस युद्ध-काल में हज़ारों व्यक्ति करोड़पति हो गए हैं, लाखों लखपति। यदि वे लोग अपनी आय में से कुछ रुपए व्यय करके एक-एक पुस्तक भी निकलवा दें, तो हिंदी-साहित्य द्रुत गति से बढ़ जाय। विद्या से बढ़कर कोई दान नहीं और इस पर भी साहित्य के विकास में अपना धन लगाना सर्वोपरि है।

आशा है, हमारे इस वक्तव्य को पढ़कर प्रत्येक ज़िले और स्टेट के धनी-मानी व्यक्ति हमें लिखेंगे, जिसमें हम उन्हें बतला सकें कि कौन-कौन पुस्तकें वे छपवाएँ।

कवि-कुटीर, लखनऊ }
१।८।४५ }

दुलारेलाल

[illegible]

पृष्ठ



श्रीदुलारेलाल

(सुधा और गंगा-पुस्तकमाला के संपादक और एकमात्र स्वामी)

अद्भुत आलाप

१—एक योगी की साप्ताहिक समाधि

आश्चर्य की बात है कि इस देश में अनेक अद्‌भुत-अद्‌भुत घटनाएँ होती हैं; पर यहाँ के पढ़े-लिखे आदमियों में उत्साह और प्रबंध-रचना में रुचि न होने के कारण वे यहाँ के किसी पत्र या पुस्तक में नहीं प्रकाशित होतीं। वे हजारों कोस दूर, सात समुद्र पार, योरप और अमेरिका पहुँचती हैं। वहाँ के अखबारों द्वारा वे फिर इस देश में आती हैं। तब हम लोग उनकी नक़ल करके अपने को कृतार्थ मानते हैं।

योग इस देश की विद्या है। यद्यपि उसका प्रायः सर्वथा नाश हो गया है, तथापि अब भी ढूँढ़ने से कहीं-कहीं सच्चे योगी देख पड़ते हैं। अभी, बहुत समय नहीं हुआ, एक योगी हरद्वार में सात दिन की समाधि धारण करके पृथ्वी के पेट में गड़ा रहा था। उस समय हरद्वार में एक अमेरिका-निवासी विज्ञान-विशारद भी मौजूद थे। आपका नाम है डॉक्टर ब्राउन। प्राकृतिक विज्ञान के आप आचार्य हैं। कई प्रसिद्ध वैज्ञानिक सभाओं के मेंबर हैं। आपने इस समाधि का हाल ४ मार्च, १९०६ की 'संडे-मैगजीन'-नामक अमेरिका की एक सामयिक पुस्तक में छपाया है। अमृत-बाजार-पत्रिका के पहले संपादक बाबू शिशिरकुमार घोष ने इसी वृत्तांत को अपनी अध्यात्म-

विद्या-संबंधिनी मासिक पुस्तक में नक़ल किया है। आपने साहब ने लिखा है कि यह घटना उन्होंने अपनी आँखों देखी है। आपके लेख का मतलब अब आप ही के मुँह से सुनिए—

"हिंदोस्तान अनेक गूढ़, अज्ञात और अद्भुत बातों की जन्मभूमि है। मैं वहाँ तीस वर्ष तक रहा। जितनी अद्भुत-अद्भुत बातें मैंने वहाँ देखीं, उनमें सबसे अधिक विस्मय पैदा करनेवाली बात एक योगी की समाधि थी। यह योगी मृत्यु को प्राप्त हो गया; सात दिन तक जमीन में गड़ा रहा, और आठवें दिन फिर खोदकर निकाला गया, तो जी उठा। यह अलौकिक घटना हरद्वार में हुई। हरद्वार हिंदुओं का पवित्र तीर्थ है। वह हिमालय के नीचे गंगा के तट पर है।

"हरद्वार में हर बारहवें वर्ष प्रचंड मेला लगता है। लोग दूर-दूर से वहाँ जाते हैं। असंख्य यात्री वहाँ इकट्ठे होते हैं। जैसी घटना का वर्णन मैं करने जाता हूँ, वैसी घटना कितने योरप-निवासियों ने देखी है, मैं नहीं कह सकता। पर इसमें संदेह नहीं कि बहुत कम ने देखी होगी। उसे देखने के लिये मुझे रूप बदलना पड़ा। साहबी पोशाक में मैं वहाँ न जाने पाता। इससे मैंने ब्राह्मण का रूप बनाया, और एक सभ्य हिंदोस्तानी बन गया। इस काम में मुझे एक हिंदोस्तानी मित्र ने बड़ी मदद दी। वह भी ब्राह्मण था और योग-विद्या में प्रवीण भी था।

"सुबह होने के बहुत पहले ही से हरद्वार के आस-पास का प्रांत कोसों तक कोलाहल और धूम-धड़ाके से भर गया।

हर सड़क से हजारों यात्री शहर में घुसने लगे। जैसे-जैसे मंदिर की तरफ यात्रियों के झुंड-के-झुंड चलने लगे, वैसे-ही-वैसे शंख, भेरी और नगाड़ों के नाद से आसमान फटने लगा। प्रत्येक गली-कूचा आदमियों से ठसाठस भर गया। नीचे यह हाल, ऊपर निरभ्र आकाश में लाल-लाल सूर्य अपनी तेज किरणों की वर्षा करने लगा।

"हम लोगों ने शक्कर के साथ थोड़ी-सी गेहूँ की रोटी और फल खाकर मंदिर की तरफ प्रस्थान किया। इसी मंदिर के हाते में योगिराज समाधिस्थ होने को थे। हम जरा जल्दी गए, जिसमें बैठने को अच्छी जगह मिल जाय। मंदिर के फाटक पर हमें कुछ पुजारी मिले। उन्होंने हमारी अगवानी की। हमारे मित्र के वे मित्र थे। वे लोग हमें मंदिर के हाते में एक बहुत विस्तृत चौकोन जगह में ले गए। वह एक बड़ी वेदी-सी थी। वहीं पर योगिराज समाधिस्थ होनेवाले थे। हजारों पंडित, पुजारी और पुरोहित दुग्धफेन-निभ वस्त्र पहने हुए वहाँ पहले ही से बैठे थे। हम वहाँ पहुँचे ही थे कि उपस्थित आदमियों में उत्तेजना फैल गई। इस आकस्मिक गड़बड़ से सूचित हुआ कि कोई विशेष बात होनेवाली है।

"हमारे मित्र ने कहा—परमहंस महात्मा पर्वत के नीचे आ गए। अब वह यहाँ आ रहे हैं। आप शायद जानते होंगे कि योगियों के आठ दर्जे होते हैं। हर योगी को क्रम-क्रम से योग के आठ अंगों की सिद्धि प्राप्त करनी होती है। एक की साधना

करके दूसरी में प्रवेश करना पड़ता है। इन योगांगों के नाम हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि। जो महात्मा आ रहे हैं, उन्होंने आठों अंग सिद्ध कर लिए हैं। मनुष्यों के सामने यह इनकी अंतिम उपस्थिति है। अपना शेष जीवन अब यह एकांत में व्यतीत करेंगे।

"बीस मिनट तक बेहद धूमधाम और कोलाहल होता रहा। शंख, नरसिंहे और भेरी आदि के शब्दों ने ज़मीन-आसमान एक कर दिया। सहसा सैकड़ों तुरहियों से एक साथ महाकर्ण-भेदी नाद होकर कोलाहल एकाएक बंद हो गया। उस चतुष्कोणाकृति चबूतरे के किनारे आगंतुक साधुओं की भीड़ आने पर सारा गड़बड़ एकदम बंद हो गया। सर्वत्र सन्नाटा छा गया। उस आगत जन-समूह में सब दर्जे के योगी थे। सिर्फ पहले दो दर्जे के न थे। वे सब गुलाबी रंग के काषाय वस्त्र धारण किए हुए थे। सबके चेहरों से गंभीरता टपक रही थी। चबूतरे का एक किनारा उनके लिये खाली रख छोड़ा गया था। उसी तरफ वे लोग चुपचाप चले गए, और अपनी-अपनी जगह पर जा बैठे। सबसे पीछे तीन योगी एक साथ आए। वे बहुत वृद्ध थे। उनका चेहरा बहुत ही प्रभावोत्पादक था। वे चबूतरे के बीच में आकर उपस्थित हुए।

"सबसे पीछे परमहंस महात्मा दिखलाई दिए। ज्यों ही वह चबूतरे के नीचे सीढ़ियों के पास पहुँचे, सारे पुजारी और पंडित उठकर कुछ दूर आगे बढ़े, और दोनो हाथ ऊपर उठा-

कर उन्होंने अभिवादन किया। परमहंसजी चबूतरे पर चढ़ आए। चबूतरे पर उनके चढ़ आने पर उपस्थित पुजारियों और पंडितों ने सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया। परमहंसजी के पास एक डंडा था। उसके ऊपर त्रिशूल बना हुआ था। उसी के सहारे वह धीरे-धीरे चबूतरे के मध्य भाग की तरफ़ चले। उनकी चाल से मालूम होता था कि चलने में उन्हें तकलीफ़ हो रही है। चबूतरे के बीच में पहुँचकर परमहंसजी खड़े हो गए, और अपने झुके हुए शरीर को सीधा कर दिया। वह बिलकुल दिगंबर थे। सिर्फ़ कमर में एक छोटा-सा काषाय वस्त्र था। उनके सिर के बाल और दाढ़ी ख़ूब लंबी थी। बाल बर्फ़ के सदृश सफ़ेद थे। एक भी बाल काला न था। सिर छोटा था। आँखें आग की तरह जल रही थीं। वे भीतर घुस-सी गई थीं। जान पड़ता था, आँखों के गढ़ों के भीतर जलते हुए दो कोयले रक्खे हैं। ऐसा कृशांग आदमी मैंने तब तक न देखा था। योगिराज की देह की एक-एक हड्डी देख पड़ती थी। हाथ, पैर, छाती और पसलियों की हड्डियाँ मानो ऊपर ही रक्खी थीं। देखने से यही जान पड़ता था कि हड्डियों के ढेर के ऊपर काली त्वचा कसकर लपेट दी गई है। परमहंसजी का रूप महाभयानक था, पर चेहरा ख़ूब तेजःपुंज था। हाथ में त्रिशूल था; गले में बड़ी-बड़ी गुरियों की रुद्राक्ष-माला थी। वक्षःस्थल पर भस्म की तीन-तीन रेखाएँ थीं।

"कुछ देर तक वह चुपचाप खड़े पुजारियों और पंडितों

की तरफ देखते रहे। फिर त्रिशूल को धीरे-धीरे दो-एक दफे ऊपर-नीचे करके मानो उन लोगों को उन्होंने आशीर्वाद दिया। फिर उस त्रिशूल को कुछ देर हाथ से नीचे लटकाकर इस जोर से जमीन के भीतर गाड़ दिया कि देखकर लोगों को आश्चर्य हुआ। किसी को आशा न थी कि परमहंसजी में इतनी शक्ति है। तब अपने दाहने हाथ से उसके सिरे को खूब मजबूती से उन्होंने पकड़ लिया। मालूम होता था कि उन्होंने सहारे के लिये ऐसा किया। कुछ देर तक वह ऐसे ही निश्चल भाव से खड़े रहे। दर्शकों में सन्नाटा छा गया। धीरे-धीरे उनका शरीर कड़ा होने लगा। यह देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। क्रम-क्रम से उनकी चेतना जाने लगी। परंतु जैसे वह खड़े थे, वैसे ही खड़े रहे। कुछ मिनटों के बाद वह बिलकुल ही निश्चेष्ट हो गए। देखने से यह मालूम होने लगा कि वह मिट्टी की निर्जीव मूर्ति हैं।

"तब ओंकार का गान आरंभ हुआ। वह अनेक प्रकार से ऊँचे-नीचे स्वर में गाया गया। योगिराज की मूर्ति वैसी ही अचल और निश्चेष्ट खड़ी रही। इतने में जो योगी परमहंस के साथ आए थे, वे उठे; उन्होंने वेदी की तीन बार प्रदक्षिणा की। ओंकार का गान तब तक बराबर होता रहा। उनमें से तीन बुड्ढे योगी परमहंसजी के पास पहुँचे। धीरे-धीरे उनका हाथ त्रिशूल से उन्होंने छुड़ाया। दो परमहंसजी के शरीर को थामे रहे। तीसरे ने जमीन पर एक सफेद चादर बिछाई। उस पर

वह शरीर बड़ी सावधानी से रख दिया गया। देखने से शरीर निर्जीव जान पड़ता था, पर निर्जीव नहीं था। योगीश्वर समाधि-अवस्था को प्राप्त हो गए थे।

"सबसे ऊँचे दर्जे के योगियों की एक टोली तब आगे बढ़ी। वे मिट्टी की एक बड़ी-सी नाँद को थामे हुए थे। यह नाँद पहले ही से आग पर चढ़ा दी गई थी। इसमें गला हुआ मोम भरा था। हरएक योगी के हाथ में एक-एक पैकेट था। उसमें सफ़ेद रंग की कोई चीज थी। उसे उन्होंने उस गले हुए मोम में डाल दिया। तब योग के प्रथम पाँच अंगों में पारंगत कुछ योगी योगिराज के शरीर को, जमीन में गाड़ने के लिये, तैयार करने लगे। उन्होंने शरीर को सफ़ेद मलमल से कई दफ़े लपेटा, और कपड़े के दोनो छोर सफ़ेद डोरी से कसकर बाँध दिए।

"परंतु इसके पहले उन्होंने समाधिस्थ योगिराज की नाक, मुँह और आँखों को एक विशेष प्रकार से तैयार किए गए मोम से ख़ूब बंद कर दिया था। उन्होंने डोरियाँ पकड़कर धीरे से शरीर को उठाया, और मोम से भरी हुई नाँद में डुबो दिया। फिर उसे निकाला, और कुछ देर अधर में वैसे ही टाँग रक्खा। जब ठंडा होने पर मोम सफ़ेद हो गया, तब फिर शरीर को पहले की तरह उन्होंने नाँद में डुबोया। आठ बार इस प्रकार मज्जन और उन्मज्जन हुआ। इधर यह काम हो रहा था, उधर कुछ योगी शरीर को भूमिस्थ करने के लिये एक गर्त खोदने में लगे थे। कोई बीस आदमी कुदारें और

फावड़े लिए हुए यह काम कर रहे थे। कुछ देर में कोई ८ फ़ीट गहरा गढ़ा खुद गया।

"तब धार्मिक गीत-वाद्य आरंभ हुआ। फिर वेदी की प्रदक्षिणा हुई। यह हो चुकने पर उन तीन वयोवृद्ध योगियों ने परमहंसजी के शरीर को लकड़ी के एक बॉक्स में रखकर गर्त के भीतर उतार दिया। ऊपर से मिट्टी डाल दी गई, और स्तूप-सा बना दिया गया। स्तूप के ऊपर समाधिस्थ योगिराज का त्रिशूल गाड़ दिया गया।

"यहाँ पर समाधि-विधि समाप्त हुई। सब पुजारी और पंडित अपने-अपने घर गए। मैं उठकर समाधि-स्तूप के पास गया। उसे मैंने खूब ध्यान से देखा। आठ दिन तक मैं रोज़ वहाँ जाता रहा, और स्तूप को खूब सावधानी से देखता रहा। मुझे विश्वास है कि इन आठ दिनों में किसी ने उस पर हाथ तक नहीं लगाया। मेरे पास ऐसे अखंडनीय प्रमाण हैं कि वह स्तूप जैसा पहले दिन था, वैसा ही अंत तक बना रहा। किसी से छुए जाने के कोई चिह्न उस पर मैंने नहीं पाए।

"आठवें दिन योगीश्वर का पुनरुत्थान हुआ—उनकी समाधि छूटी। फिर पूर्ववत् दर्शकों और पुजारियों की भीड़ हुई। फिर पूर्ववत् प्रदक्षिणा और गाना-बजाना हुआ। उन्हीं योगियों ने स्तूप को खोदकर मिट्टी हटाई, और बॉक्स को बाहर निकाला। वह लकड़ी के एक तख़्त पर रक्खा गया। बॉक्स के ऊपर का तख़्ता बिरंजियों से खूब बंद कर दिया गया था। वह वैसा ही

मिला। कीलें निकालकर बॉक्स खोला गया। शरीर से लिपटी हुई मलमल की चादर धीरे-धीरे खोलकर अलग की गई। आँख, नाक, कान और मुँह का मोम निकाला गया। मुँह खूब अच्छी तरह धोया गया। इतना हो चुकने पर योगिवर्ग वहाँ से हट आया, और वेदी की प्रदक्षिणा करके उसने ओंकार का गान आरंभ किया। बाजे भी बजने लगे। तीसरी प्रदक्षिणा के समय समाधि-मग्न योगिराज का शरीर कुछ हिला, और कुछ ही देर में वह उठकर बैठ गए। उन्होंने अपने चारों तरफ़ इस तरह देखा, जैसे कोई सोते से जगा हो।

"यहाँ तक तो सब लोग पूर्ववत् बैठे रहे। परंतु जहाँ योगिराज उठे, और जमीन पर उन्होंने अपना पैर रक्खा, तहाँ दर्शकों ने कोलाहल आरंभ कर दिया। शंख, भेरी, नगाड़ों और नरसिंहों के नाद ने पृथ्वी और आकाश एक कर डाला। सबके मुँह से एक साथ आदरार्थक शब्दों के घोष से कानों के परदे फटने लगे। बराबर दस मिनट तक तुमुल-नाद होता रहा। किसी तरह धीरे-धीरे वह शांत हुआ। जिस क्रम से योगिराज ने वेदी पर पदार्पण किया था, उसी क्रम से उन्होंने प्रस्थान भी किया। सबके पीछे आप, उनके आगे वे तीन जरा-जीर्ण योगी, उनके आगे और सब लोग। इस तरह परमहंसजी पास के एक पर्वत की गुफा की तरफ़ गए। सुनते हैं, अब वह अंत समय तक वहीं, उसी गुफा में, रहेंगे और फिर कभी बस्ती में न आवेंगे।"

इसके बाद साहब बहादुर ने अपने हिंदोस्तानी मित्र से इस विषय में बहुत कुछ वार्तालाप किया और इस बात को साफ़-साफ़ स्वीकार किया कि आध्यात्मिक बातों में इस देश ने जितनी उन्नति की है, उतनी और किसी देश ने नहीं की।

अॉक्टोबर, १९०६

२—आकाश में निराधार स्थिति

योगियों को अनेक प्रकार की अद्भुत-अद्भुत सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। योगशास्त्र में लिखा है कि वे आकाश में यथेच्छ गमन कर सकते हैं; जल में स्थल की तरह दौड़ सकते हैं; पर-काय-प्रवेश कर सकते हैं; अंतर्धान हो सकते हैं; और दूर देश या भविष्यत् की बात हस्तामलकवत् देख सकते हैं। पर इस समय, इस देश में, इस तरह के सर्वसिद्ध योगी दुर्लभ हैं। यदि कहीं होंगे, तो शायद हिमालय के निर्जन स्थानों में योग-मग्न रहते होंगे।

अमेरिका से निकलनेवाली एक अँगरेज़ी मासिक पुस्तक को एक दिन हमने खोला, तो उसके भीतर छपे हुए कागज़ों का एक ख़ासा पुलिंदा मिला। उसमें कई तरह के नियम-पत्र, नमूने और तसवीरें इत्यादि थीं। उनको अमेरिका की एक आध्यात्मिक सभा ने छपाया और प्रकाशित किया था। बहुत करके यह सभा कोई कल्पित सभा है। इन कागज़ों

में लिखा था कि हिंदोस्तान की सारी योग-विद्या अमेरिका पहुँच गई है, और अमेरिका की पूर्वोक्त सभा के चंद योगी इस विद्या को, बहुत थोड़ी फ़ीस लेकर, सिखलाने को राज़ी हैं; यहाँ तक कि कितने ही आदमियों को उन्होंने पूरा योगी बना भी दिया है। यह योगशिक्षा डाक के ज़रिए वे लोग देते हैं; परंतु कई 'डालर' फ़ीस पहले ही भेजनी पड़ती है। एक डालर कोई तीन रुपए का होता है। इन काग़ज़ों में एक साहब और एक बंगाली बाबू का नाम था, और लिखा था कि ये लोग अभूत-पूर्व योगी हैं। इनमें इस देश की विद्या की, इस देश के पंडितों की, इस देश के योगियों की, बेहद व बेहिसाब तारीफ़ थी। उससे जान पड़ता था, जैसे यहाँ गली-गली योगी मारे-मारे फिरते हों। हमने इस सभा को एक पत्र लिखा। हमने कहा कि आपके अद्भुत योगी—बंगाली बाबू—का यहाँ कोई नाम भी नहीं जानता, और योगसिद्ध पुरुष यहाँ उतने ही दुर्लभ हैं, जितना कि पारस-पत्थर या संजीवनी बूटी या देव-लोक का अमृत। अतएव आपको सभावालों को यह योगविद्या कहाँ से और किस तरह प्राप्त हुई? ख़ैर, हम भी आपसे योग सीखना चाहते हैं, और फ़ीस भी देना चाहते हैं; परंतु डालर-दान के पहले हम आपसे योग-विषयक एक बात पूछना चाहते हैं। यदि आप हमारे प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर भेजकर हमारा समाधान कर देंगे, तो हम आपकी सभा से ज़रूर योग सीखेंगे।

अमेरिका दूर है। इससे कोई डेढ़ महीने में उत्तर आया।

योगी बाबू इत्यादि के विषय में हमने जो कुछ लिखा था, उत्तर में उसका बिलकुल ही जिक्र हमें ढूँढ़े न मिला। हमारे प्रश्न का समाधान भी न मिला। मिला क्या ? उत्तर के साथ काग़ज़ों का एक और पैकट। उसमें कहीं प्रशंसा-पत्र, कहीं योगासन के चित्र, कहीं कुछ, कहीं कुछ। पत्र में सिर्फ़ यह लिखा था कि 'डालर' भेजिए, तब आपके प्रश्न का उत्तर दिया जायगा, और तभी योग का सबक़ भी शुरू किया जायगा! इस उत्तर को पढ़कर हमें योगियों की इस सभा से अत्यंत घृणा हुई, और हमने उसके काग़ज़-पत्र उठाकर रद्दी में फेंक दिए। तो अब हिंदोस्तान की योग-विद्या यहाँ से भागकर योरप और अमेरिका जा पहुँची है, और वहाँ उसने पूर्वोक्त प्रकार की सभा-संस्थाओं का आश्रय लिया है। तथापि यहाँ, अब भी, कहीं-कहीं, योग के किसी-किसी अंग में सिद्ध पुरुष पाए जाते हैं।

मिर्ज़ापुर में एक गृहस्थ हैं। वह गृहस्थाश्रम में रहकर भी बीस मिनट तक प्राणायाम कर सकते हैं। इसी शहर के पास एक जगह विंध्याचल है। वहाँ विंध्यवासिनीदेवी का मंदिर है। मंदिर से कोई दो मील आगे एक पहाड़ पर एक महात्मा रहते हैं। अगस्त, १९०४ में हम उनके दर्शन करने गए थे। एक निविड़ खोह में एक झरना था। वहीं आप थे। आपके पास एक हाँड़ी के सिवा और कुछ नहीं रहता। इससे लोग उन्हें 'हँड़ियाबाबा' कहते हैं। आप संस्कृत के अच्छे विद्वान् हैं, और प्रायः संस्कृत ही बोलते हैं। हमने खुद तो नहीं देखा, पर सुनते हैं, योग के

कई अंग इनको सिद्ध हैं। अभी, कुछ दिन हुए, कानपुर में एक योगी आए थे। वह तीन दिन तक समाधि लगा सकते थे।

पुराने जमाने की बात हम नहीं कहते। रामकृष्ण परमहंस आदि योग-सिद्ध महात्मा इस जमाने में भी यहाँ हुए हैं। सुनते हैं, स्वामी दयानंद सरस्वती और स्वामी विवेकानंद को भी योग में दखल था। कई वर्ष हुए, पंजाब के किसी नवयुवक की अद्भुत सिद्धियों का वृत्तांत भी हमने अखबारों में पढ़ा था। इससे जान पड़ता है कि योग के सब अंगों में सिद्धि प्राप्त करनेवाले पुरुष यद्यपि इस समय दुर्लभ हैं, तथापि उसके कुछ अंगों में जिन्हें सिद्धि हुई है, ऐसे लोग अब भी यहाँ पर, कहीं-कहीं, देख आते हैं।

आकाश में निराधार स्थिर रहना और यथेच्छ विहार करना असंभव-सा है। पर यदि योग-शास्त्र में लिखी हुई बातें सच हैं—और उनके सच होने में संदेह भी नहीं है—तो ऐसा होना सर्वथा संभव है। सुनते हैं, शंकराचार्य यथेच्छ व्योम-विहार करते थे। शंकरदिग्विजय नाम का एक ग्रंथ है। उसमें शंकराचार्य का जीवन-चरित है। उसमें एक जगह लिखा है—

ततः प्रतस्थे भगवान् प्रयागात्तं मण्डनं पण्डितमाशु जेतुम् ;
गच्छन् खमुत्पत्य पुरमालुलोके माहिष्मतीं मण्डनमण्डितां सः।

अर्थात् मंडन पंडित को जीतने के लिये भगवान् शंकराचार्य ने प्रयाग से प्रस्थान किया, और आकाश-मार्ग से गमन करके मंडन-मंडित माहिष्मती-नगरी को देखा।

अतएव कोई नहीं कह सकता कि यह बात असंभव, अतएव ग़लत है। आकाश-विहार करना तो बहुत कठिन है, पर आकाश में निराधार ठहरने का एक-आध दृष्टांत हमने भी सुना है, हमें स्मरण होता है. हमने कहीं पढ़ा है कि कोई गुजरात-देश के महात्मा ज़मीन से कुछ दूर ऊपर उठ जाते थे, और थोड़ी देर तक निराधार वैसे ही ठहरे रहते थे। पर इस प्रकार की सिद्धियों को दिखलाकर तमाशा करना अनुचित है। योग-साधना तमाशे के लिये नहीं की जाती। इससे हानि होती है, और प्राप्त से अधिक सिद्धि पाने में बाधा आती है। हरिदास इत्यादि योगियों ने अपनी योग-सिद्धि के जो दृष्टांत दिखलाए हैं, वे तमाशे के लिये नहीं, केवल योग में लोगों का विश्वास जमाने के लिये। तमाशा लौकिक प्रसिद्ध प्राप्त करने या रुपये कमाने के लिए दिखाया जाता है। पर योगियों को इसकी परवा नहीं रहती। वे इन बातों से दूर भागते हैं; उनकी प्राप्ति की चेष्टा नहीं करते। परन्तु जिन लोगों ने योग की सिद्धियों की बात नहीं सुनी, वे ऐसे तमाशों को अचंभे की बातें समझते हैं। ऐसे ही एक तमाशे का हाल हम यहाँ पर लिखते हैं। यह तमाशा एक सिविलियन (मुल्की अफ़सर) अँगरेज़ का देखा हुआ है। उसकी इच्छा है कि इँगलैंड की अध्यात्म-विद्या-संबंधिनी सभा इसकी जाँच करे। यह वृत्तांत एक अँगरेज़ी मासिक पुस्तक में प्रकाशित हुआ है। तमाशा है इस देश का, पर यहाँ के किसी पत्र या पत्रिका को इसका

समाचार नहीं मिला। समाचार गया विलायत। वहाँ से अँगरेजी में छपकर यहाँ आया। तब उसे पढ़ने का सौभाग्य हिंदोस्तानियों को प्राप्त हुआ! अब इस तमाशे का हाल पूर्वोक्त सिविलियन साहब ही के मुँह से सुनिए—

"हिंदोस्तान के उत्तर में, नवंबर के शुरू में, जाड़ा पड़ने लगता है। तब जिले के सिविलियन साहब दौरे पर निकलते हैं। मुझे भी हर साल की तरह दौरे पर जाना पड़ा। एक दिन एक पढ़े-लिखे हिंदोस्तानी जमींदार ने आकर मुझसे मुलाकात की। उसने कहा कि मैंने एक बड़ा ही आश्चर्य-जनक तमाशा देखा है। आत्मविद्या के बल से एक लड़का जमीन से चार फीट ऊपर-अधर में, बिना किसी आधार के ठहरा रहता है। इससे मिलते-जुलते हुए तमाशों का हाल मैंने सुन रक्खा था। मैंने सुना था कि मदारी लोग रस्सी को आकाश में फेंककर उस पर चढ़ जाते हैं, और इसी तरह के अजीब-अजीब तमाशे दिखलाते हैं। पर मैंने यह न सुना था कि कोई आकाश में भी बिना किसी आधार के ठहर सकता है। इससे इस तमाशे को देखने को मुझे उत्कट अभिलाषा हुई। मेरे हिंदोस्तानी मित्र ने मुझसे वादा किया कि मैं आपको यह तमाशा दिखलाऊँगा।

"१४ नवंबर, १९०४, को मेरे मित्र ने मुझ पर फिर कृपा की। इस दफे वह उस तमाशेवाले को भी साथ लेता आया। यह देखकर मैं बहुत खुश हुआ। तमाशेवाले की उम्र चालीस वर्ष से कुछ कम थी। उसने कहा, मैं ब्राह्मण हूँ। जहाँ पर मेरा

खेमा था, वहीं, कुछ दूर पर, उसने कोई १२ वर्गफुट जगह साफ़ करके उसके तीन तरफ़ क़नात लगा दी। चौथी तरफ़ उसने परदा डाल दिया। इच्छानुसार परदा डाल दिया जा सकता था और उठा भी लिया जा सकता था। परदे से १५ फ़ीट की दूरी पर देखनेवाले बैठे। तमाशेवाले के साथ एक लड़का था। उसकी उम्र बारह-तेरह वर्ष की होगी।

"जिस विद्या को अंगरेज़ी में मेस्मेरिज़्म कहते हैं, उसका ठीक-ठीक अनुवाद हिंदी में हम नहीं कर सकते। पर इस विद्या के नाम से सरस्वती के प्रायः सभी पाठक परिचित होंगे। इसके अनुसार जिस व्यक्ति पर असर डाला जाता है, वह असर डालनेवाले के वश में हो जाता है। इसे आत्म-विद्या, अध्यात्म-विद्या, वशीकरण-विद्या आदि कह सकते हैं।

"इसी विद्या के नियमों के अनुसार तमाशेवाले ने उस लड़के पर असर डालना शुरू किया (तमाशेवाले को इससे आगे हम प्रयोक्ता के नाम से उल्लेख करेंगे)। कुछ देर तक प्रयोक्ता ने लड़के पर पाश डाले। इतने में वह निश्चेष्ट हो गया। तब प्रयोक्ता ने उसे एक संदूक़ पर चित लिटा दिया। संदूक़ को उसने पहले ही से कनात के घेरे के भीतर रख लिया था। फिर उसे उसने एक कपड़े से ढक दिया, और परदे को नीचे गिरा दिया। तमाशे का पहला दृश्य यहीं पर समाप्त हो गया।

"तीन-चार मिनट के बाद परदा फिर उठा, और दूसरा दृश्य दिखाई दिया। हम लोगों ने देखा, वह लड़का मोटे कपड़े की

एक गद्दी पर पद्मासन से बैठा है। यह गद्दी एक तिपाई के ऊपर रक्खी थी। तिपाई बाँस की थी। नीचे तीनो बाँस अलग-अलग थे, पर ऊपर वे तीनो एक दूसरे से मिलाकर बाँध दिए गए थे। उनके उस भाग पर, जो ऊपर निकला था, गद्दी रक्खी थी। लड़के के हाथ दोनो तरफ़ फैले हुए थे। हाथों के नीचे एक-एक बाँस और था। उसी की नोक पर हाथों की हथेली रक्खी थी। ये दोनो बाँस तिपाई के बाँसों से कुछ लंबे थे। वे नीचे ज़मीन को सिर्फ़ छुए हुए थे, गड़े न थे। लड़के का सिर और उसके कंधे एक काले कपड़े से ढके थे। इस कपड़े को प्रयोक्ता कभी-कभी उठा देता था, जिससे लड़के का चेहरा खुल जाता था, और छाती भी देख पड़ने लगती थी।

"इसके बाद प्रयोक्ता ने तिपाई के तीनो बाँस एक-एक करके धीरे-धीरे खींच लिए। लड़का पूर्वोक्त गद्दी के ऊपर, वैसे ही पालथी मारे हुए, आकाश में बैठा रह गया। उसका आसन ज़मीन से कोई चार फ़ीट ऊपर था। उसके हाथ वैसे ही फैले और पूर्वोक्त दोनो बाँसों पर रक्खे हुए थे। इन दो बाँसों की ऊँचाई कोई ६ फ़ीट होगी। हम लोग निर्निमेष दृष्टि से लड़के की तरफ़ देख रहे थे कि प्रयोक्ता 'फ़क़ीर' ने उन दो बाँसों में से भी एक को खींच लिया, और लड़के के एक हाथ को समेटकर छाती पर रख दिया। तब लड़के का सिर्फ़ एक हाथ बाँस पर रह गया। यह देखकर हम लोगों के आश्चर्य की सीमा न रही। क्या बात थी, जिससे वह लड़का, पत्थर की

मूर्ति के समान, निश्चल भाव से, आकाश में इस तरह बैठा रह गया ? क्यों न वह धड़ाम से नीचे आ गिरा ?

"मैंने उस साधु से कहा—क्या मैं तुम्हारे पास तक आ सकता हूँ ? अब तक मैं परदे से कोई १५ फ़ीट और उस लड़के से कोई २० फ़ीट पर बैठा था। प्रयोक्ता ने कहा—जितना नज़दीक आप चाहें, चले आवें, पर लड़के के बदन पर हाथ न लगाइएगा। कई और तमाशबीनों के साथ मैं आगे बढ़ा, और लड़के से छ इंच के फ़ासले तक चला गया। मैं उसके आसन के नीचे गया, पीछे गया, इधर गया, उधर गया—किसी जगह की जाँच मैंने बाक़ी न रक्खी। यहाँ तक कि मैंने अपनी छड़ी को सब तरफ़ फेरकर देखा कि कहीं कोई तार या और कोई आधार तो नहीं है, जिसके बल से यह लड़का आकाश में ठहरा हुआ है। पर मुझे कोई चीज़ न मिली। लड़का जहाँ-का-तहाँ मेरे सामने अधर में था। उसका चेहरा खुला था। उसकी छाती भी देख पड़ती थी। यहाँ तक कि साँस लेते समय में उसकी छाती पर श्वासोच्छ्वास की चाल भी देखता था।

"दो मिनट तक हम लोग वहाँ खड़े जाँच करते रहे कि कोई चालबाज़ी की बात हमको मिले, पर हमारा प्रयत्न बेकार हुआ। लड़का अपने स्थान पर, आकाश में, अचल रहा। तब हम लोग अपनी जगह पर लौट आए, और बैठ गए। पर उस साधु ने हमें अपनी जगह पर जाने के लिये नहीं कहा, और न उसने यही कहा कि हम लड़के के पास से हट जायँ, जिसमें

वह तमाशे का अंतिम दृश्य भी दिखला सके। जब हम लोग अपनी जगह पर बैठ गए, तब तमाशे का अत्यंत ही अद्भुत और आश्चर्य-जनक दृश्य हमको दिखलाया गया। प्रयोक्ता ने दूसरे बाँस को भी धीरे से खींच लिया, और उस पर रक्खे हुए हाथ को समेटकर लड़के की छाती पर पहले हाथ के ऊपर रख दिया। लड़का पूर्वोक्त गद्दी पर पद्मासन में निराधार बैठा हुआ रह गया। उसके दोनो हाथ छाती पर एक दूसरे के ऊपर रक्खे थे। न उसके नीचे कुछ था, न आगे था, न पीछे था, न इधर था, न उधर था। इस दशा में वह ब्राह्मण लड़के से कोई चार-पाँच फ़ीट की दूरी पर कुछ देर तक खड़ा रहा। तब उसने परदा गिरा दिया, और वह लड़का हम लोगों की नज़र से छिप गया। यहाँ पर इस तमाशे का दूसरा दृश्य समाप्त हुआ।

"जब तीसरी दफ़े परदा उठा, तब हमने उस लड़के को पूर्वोक्त संदूक़ पर लेटा हुआ देखा। कुछ देर में उस ब्राह्मण ने लड़के पर से अपना असर (उलटे पाश फेरकर) दूर करना आरंभ किया। कोई दो मिनट में लड़का उठ बैठा, और आँखें मलकर उस ब्राह्मण की तरफ़ देखने लगा। इस तमाशे में आदि से अंत तक कोई बीस या पच्चीस मिनट लगे होंगे।

"मैंने ब्राह्मण से पूछा—क्या तुम किसी और आदमी को भी इसी तरह अपने वश में कर सकते हो? उसने कहा—यदि कोई बड़ी उम्र का आदमी इस बात की कोशिश करे कि मैं उसे अपने वश में न कर सकूँ, अर्थात् उस पर अपना

असर न डाल सकूँ, तो उस पर मेरा वश न चलेगा। पर बारह वर्ष या उससे कम उम्र के किसी भी लड़के को मैं अपने वश में कर सकता हूँ—अर्थात् उसे मैं मेस्मेराइज़ कर सकता हूँ। मैंने चाहा कि मैं उसकी आत्मविद्या की परीक्षा लूँ। मैंने दर्शकों की भीड़ में सब लोगों की तरफ़ देखना शुरू किया। मुझे एक लड़का देख पड़ा। वह पास ही के एक गाँव से आया था। वह उस फ़क़ीर की करामात की जाँच अपने ऊपर कराने को राज़ी हुआ। मैंने उससे कहा—वह आदमी तुमको सुला देने की कोशिश करेगा। यदि तुम नींद न आने दोगे, बराबर जागते रहोगे, तो मैं तुमको एक रुपया दूँगा। ब्राह्मण ने उस लड़के को अपने सामने बिठाया, और उसके चेहरे की तरफ़ निर्निमेष दृष्टि से देखते हुए उसने पास देना शुरू किया। दो मिनट भी न हुए होंगे कि लड़का गहरी नींद में सो गया।

"मैं उन आदमियों में से हूँ, जो भूत-प्रेत, योग, आत्मविद्या और अंतर्ज्ञान आदि में विश्वास नहीं करते। इससे इस बात का पता न लगा सकने के कारण मुझे बड़ा अफ़सोस हुआ—नहीं, क्रोध आया कि किस प्रकार वह लड़का निराधार अधर में बैठा रहा। अतएव मैंने उस ब्राह्मण से कहा कि क्या आप सदर में आकर अपना करतब दिखा सकते हैं? इस बात पर वह राज़ी हो गया। इसके लिये २१ नवंबर, १९०४, का दिन नियत हुआ। मैं सदर को वापस आया। यथासमय वह फ़क़ीर मेरे बँगले पर हाज़िर हुआ, और वहाँ उसने इस तमाशे को

ठीक-ठीक उसी तरह दिखाया, जैसा उसने मुझे दौरे पर दिखाया था। मेरे जितने मित्र उस शहर में थे, उन सबको मैंने इस फ़क़ीर की करामात देखने के लिये बुला लिया था। मैं समझता था कि मेरे मित्रों में शायद कोई मुझसे अधिक चतुर हो, और वह इस साधु की चालाकी का पता लगा सके। मेरे बुलाने से कोई २५ आदमी आए। सबने इस बात की यथाशक्ति कोशिश की कि वे इस ब्राह्मण की करामात का कारण ढूँढ़ निकालें, पर सब हतमनोरथ हुए। किसी की अक़्ल काम में न आई। किसी को चालाकी की कोई बात न देख पड़ी। सब लोगों को मेरी ही तरह हैरत हुई।

"कुछ दिनों के बाद वहाँ एक नए साहब आए। उनसे लोगों ने इस तमाशे की बात कही; पर उनको विश्वास न आया। उन्होंने इसकी असंभवनीयता पर एक लंबा-चौड़ा व्याख्यान दिया, और हम सब लोगों की अवलोकन-शक्ति के विषय में बहुत ही बुरी राय क़ायम की। इससे मैंने उनको भी यह तमाशा दिखाने का निश्चय किया।

"२८ नवंबर को मैंने उस ब्राह्मण को फिर अपने बँगले पर बुलाया, और फिर उसने पूर्वोक्त तमाशे को दिखाया। पर इस दफ़े उसने उन दोनों बाँसों में से एक को निकाल लिया, परंतु दूसरे को नहीं निकाला। उस पर लड़के का हाथ रक्खा ही रहा। इसका कारण उसने यह बतलाया कि उस दिन उसकी तबीयत अच्छी न थी, और लड़का भी सुस्त था। इस दफ़े मैंने

एक फ़ोटोग्राफ़र को भी बुला लिया था। उसने इस तमाशे के सब दृश्यों का फ़ोटो ले लिया। यह साहब, इस दफ़े, वैसे ही चकित हुए, जैसे हम लोग पहले ही हो चुके थे। उनको भी कोई चालाकी ढूँढ़े न मिली।

"यदि कोई मुझे इस बात को समझा दे कि किस तरकीब से—किस शक्ति से—यह लड़का आकाश में निराधार रह सकता है, तो मैं उसका बहुत कृतज्ञ होऊँ। मैं अपना नाम और पता, और जिन साहबों और मेमों ने इस तमाशे को देखा है, उनके भी नाम, पते-समेत, देने को तैयार हूँ। जरूरत पड़ने पर मैं उस ब्राह्मण का भी पता बतला सकता हूँ।

"मेरे एक लड़का है। वह इँगलैंड में है। उसे मैंने इस तमाशे का हाल लिखा। मुझ पर उसका बड़ा प्रेम है। मेरी शुभ-कामना की इच्छा से उसने मुझे लिखा—यदि मैं होता, तो ऐसे तमाशे देखने न जाता, क्योंकि बहुत संभव है, उस ब्राह्मण ने देखनेवालों पर भी अपना असर डाल दिया हो। और, इस तरह उसके वश में आ जाना अच्छा नहीं। यदि उसने ऐसा न किया हो, तो सचमुच आश्चर्य की बात है। परंतु फ़ोटोग्राफ़ लेने के निर्जीव कैमरे पर आत्मविद्या का असर नहीं पड़ सकता। अतएव मेरे लड़के की यह कल्पना ठीक नहीं। इस तमाशे के जो चित्र लिए गए हैं, वे ठीक वैसे ही हैं, जैसा कि हम लोगों ने उसे अपनी आँखों देखा है।

"उस ब्राह्मण का कथन है कि मैंने यह विद्या थियॉसफ़िकल

सोसाइटी के स्थापक कर्नेल आलकाट से सीखी है। इसके चार-पाँच वर्ष पहले तक वह आकाश में उड़ती हुई चिड़ियों की तरफ़ देखकर इच्छा-शक्ति से ही उन्हें ज़मीन पर गिरा सकता था। परंतु बीच में वह बहुत बीमार हो गया। तब से उसकी यह शक्ति जाती रही।"

यहाँ सिविलियन साहब का कथन समाप्त होता है। आकाश में लड़के को निराधार ठहरा देख उन्हें जो आश्चर्य हुआ, वह युक्त है। परंतु योग और अध्यात्म-विद्या की महिमा को जो जानते हैं, उनको ऐसी बातें सुनकर कम आश्चर्य होता है। जो लोग पूरे योगी हैं, वे आकाश में स्वच्छंद विहार कर सकते हैं। जिनको योग के कुछ ही अंग सिद्ध हो जाते हैं, उनमें भी अनेक अलौकिक शक्तियाँ आ जाती हैं। परंतु ऐसी शक्तियों का दुरुपयोग करना अनुचित और हानिकारक होता है। उनके प्रयोग को दिखाकर खेल-तमाशे न करना चाहिए।

कुछ दिन हुए, कानपुर में एक योगी आए थे। आपका नाम है आत्मानंद स्वयंप्रकाश सरस्वती। कोई दो महीने तक वह गंगा-किनारे रहे थे। वह तैलंग-देश के निवासी हैं। उनके साथ उनका एक चेला भी था। वह सिर्फ़ अपनी देश-भाषा या संस्कृत बोल सकते हैं। संस्कृत में योग-विषय पर उन्होंने दो-एक पुस्तकें भी लिखी हैं। उनमें से एक पुस्तक कानपुर में छापी भी गई है। उनको आडंबर बिल्कुल प्रिय न था। हिंदी न बोल सकने के कारण उनके यहाँ भीड़ कम रहती थी।

तिस पर भी शाम-सुबह बहुत-से पढ़े-लिखे आदमी उनके दर्शनों को जाया करते थे। कानपुर के प्रसिद्ध वकील पंडित पृथ्वीनाथ तक उनके दर्शनों को जाते थे। उनको समाधि तक की सिद्धि है। तीन दिन तक वह समाधिस्थ रह सकते हैं। पर कानपुर में वह जब तक रहे, तब तक कोई तीन ही घंटे अपने कुटीर के भीतर रहते रहे। अर्थात् तीन घंटे से अधिक लंबी समाधि उन्होंने नहीं लगाई। योग और वेदांत-विषय पर वह खूब वार्तालाप करते थे, पर संस्कृत ही में। जो लोग इन विषयों को कुछ जानते थे, उन्हीं की तरफ़ वह मुख़ातिब होते थे, औरों से वह विशेष बातचीत न करते थे। उनसे यह प्रार्थना की गई कि वह सबके सामने समाधिस्थ हों, जिसमें जिन लोगों का योग-विद्या पर विश्वास नहीं है, उनका भी विश्वास हो जाय। पर ऐसा करने से उन्होंने इनकार किया। उन्होंने कहा कि स्वामी हंसस्वरूप से कहिएगा, वह शायद आपकी इच्छा पूर्ण कर दें। मैं तमाशा नहीं करता, चाहे किसी को विश्वास हो, चाहे न हो। बहुत कहने पर आपने दो-तीन दफ़े श्वास चढ़ाया, और आपने दाहने हाथ की कलाई सामने कर दी। देखा गया, तो नाड़ी की चाल ग़ायब; प्राण वहाँ से खिंच गए। उनके इस दृष्टांत से, उनके ग्रंथों से, उनकी बातचीत से यह सिद्ध हो गया कि वह सचमुच सिद्ध योगी हैं। उनके इनकार ने इस बात को भी पुष्ट कर दिया कि लोगों को दिखाने के लिये योग की कोई क्रिया करना मना है।

[अक्टोबर, १९०५

३—अंतःसाक्षित्व-विद्या

जिस विद्या के बल से आदमी दूसरे के दिल का हाल जान लेता है, जिसके बल से आदमी दूसरे के मन में—दूसरे के अंतःकरण में—घुस-सा जाता है, जिसके बल से आदमी ग़ैब की बात जान जाता है, जिसके बल से आदमी भूत, भविष्य और वर्तमान को हस्तामलकवत् देखने लगता है, उसे अंतःसाक्षित्व, अंतर्ज्ञान या परोक्षदर्शन-विद्या कहते हैं। उसी का नाम इल्म-ग़ैब है। पर वह है क्या चीज़। क्या वह विद्या है, या कला है, या एक तरह का पेशा है। कुछ भी हो, वह एक ऐसी अद्भुत शक्ति है, जो बहुत कम आदमियों में पाई जाती है। वह ईश्वर का ऐसा अलौकिक प्रसाद है, जो किसी विरले ही पुण्यवान् पुरुष को मिलता है।

पुरानी पुस्तकों में लिखा है कि भारतवर्ष के प्राचीन ऋषि-मुनि त्रिकालदर्शी थे, योगिजन अंतर्ज्ञानी थे; और अब भी जहाँ कहीं वे हैं, दूसरे के दिल का हाल जान सकते हैं, हज़ारों कोस दूर होनेवाली घटनाओं का अनुभव कर सकते हैं, और भविष्यत् को अपनी हथेली पर रक्खा हुआ-सा देख सकते हैं। परंतु ऐसे उदाहरण विरल—बहुत ही विरल—हैं। अधिकता ऐसे ही उदाहरणों की है, जिनकी परीक्षा करने से कपट, छल, धोकेबाज़ी और किसी तरह पैसा कमाने की युक्ति के सिवा और कोई बात देखने में नहीं आती।

कोई सात वर्ष हुए, जब हम झाँसी में थे। वहाँ एक कम उम्र के पंडित आए। आप योगशास्त्री के नाम से प्रसिद्ध थे। शायद आप अब विद्यमान नहीं। आप कहीं इसी तरफ़ के रहनेवाले थे। झाँसी में आप एक गवर्नमेंट पेंशनर, बंगाली बाबू, के यहाँ ठहरे। आपकी विद्या की चर्चा खूब होने लगी। लोग आपके पास दौड़-दौड़ जाने लगे। बड़े-बड़े वकीलों, डॉक्टरों और मास्टरों को अपनी त्रिकालदर्शिता से आपने मोहित कर लिया। सबके प्रश्नों का उत्तर आप देने लगे, और प्रायः सब लोग संतुष्ट, प्रसन्न और चकित हो-होकर आपके पास से लौटने लगे। फ़ीस आपकी सिर्फ़ एक रुपया थी। हमको भी हमारे मित्रों ने योगशास्त्रीजी के दर्शन करने के लिये विवश किया। खैर, हम जाने को और पंडितजी से कुछ पूछकर कृतार्थ होने को भी राज़ी हो गए।

एक दिन शाम को हमने अपने पंडित श्रीयुत वासुदेवराव शास्त्री को साथ लिया। उनका कनिष्ठ पुत्र, नारायण भी, हम लोगों के साथ हुआ। योगशास्त्रीजी के स्थान पर जब हम पहुँचे, तब आप शौच गए थे। शौच से निपटकर आपने कटि-स्नान किया। तब आप हम लोगों के पास आए। आगत-स्वागत होने के बाद हमने आपकी संस्कृतज्ञता की थाह लेने के इरादे से कुछ कहा। उसका उत्तर आपने सिर्फ़ 'अनुग्रह, अनुग्रह' के रूप में दिया। तब हमने एक रुपया आपके हाथ में रक्खा, और कहा कि हमारे विषय में आप कुछ कहिए। इस

पर योगशास्त्रीजी हमको मकान के भीतर, अपने आसन के पास, ले गए। परंतु हमारे साथ वासुदेव शास्त्री और उनके चिरंजीव नारायण को ले जाने से आपने इनकार किया। हमने वासुदेव शास्त्री से कहा कि यह शर्त हम मंजूर किए लेते हैं। अगर हमको इनके अंतःसाक्षित्व से संतोष हुआ, तो आप हमारे बाद इनसे जो कुछ पूछना हो, पूछ आइएगा। उन्होंने कहा—हमें कुछ नहीं पूछना; हम इनसे पहले ही से परिचित हो चुके हैं। अस्तु। हम योगशास्त्रीजी के आसन के पास बैठे। वह कुछ ध्यानस्थ-से हुए, और हमारे भविष्य से संबंध रखनेवाली बातें कहने लगे। हमने सुनकर कहा कि आप हमारे प्रश्नों का उत्तर देकर अपनी विद्या में हमारी श्रद्धा उत्पन्न करें, तब आप आगे होनेवाली बातें कहें। ऐसा करने से आपकी उक्तियों में हमें अधिक विश्वास होगा। इस पर वह किसी तरह राजी हुए। तब हमने फ़ारसी के—

चु अज क़ौमे यके बेदानिसी कर्द
न क़ेहरा मंजिलत मानदन मेहरा

इस मिसरे को याद किया, और कहा कि बतलाइए, हमारे मन में किस भाषा का कौन-सा पद्य है। यह एक ऐसा पद्य था, जो उन योगिराजजी पर भी विलक्षण तरह से घटित होता था। इसका हमने कई मिनट तक मनन किया, पर वह महात्मा इसे न बता सके। इस प्रश्न के उत्तर में वह बेतरह फ़ेल हुए। तब हमने उनसे ये प्रश्न किए—

(१) हमारे कितने विवाह हुए हैं?

(२) हमारी कितनी स्त्रियाँ इस समय जीवित हैं ?

(३) हमारे संतति कितनी हुई—कितने लड़के, कितनी लड़कियाँ ?

(४) उसमें से कितनी इस समय विद्यमान हैं ?

हजार प्रयत्न करने पर भी योगशास्त्रीजी इन प्रश्नों का ठीक-ठीक उत्तर न दे सके। जब उनके उत्तर बहुत ही अंड-बंड होने लगे, तब हमने उनसे कहा कि आपके इतने ही उत्तर काफी हैं। और भी हमने कई प्रश्न किए। पर वह बराबर फ़ेल ही होते गए। उस समय उनके मन की क्या हालत हुई होगी, यह तो वही जानते होंगे, पर अपनी असामर्थ्य के प्रमाण में उन्होंने हमारा रुपया वापस कर दिया। हमारे बहुत कहने पर भी उन्होंने उसे न लिया। इस असामर्थ्य का कारण उन्होंने यह बतलाया कि आज हमने सुबह से कई आदमियों के प्रश्नों का उत्तर दिया है। इससे हमारी अंतर्ज्ञान-शक्ति क्षीण हो गई है। उन्होंने हमसे वादा किया कि उसी दिन रात को आठ बजे वह हमारे मकान पर पधारेंगे, और हमारे जन्म-पत्र को देखकर हमारे प्रश्नों का उत्तर देंगे। रात को ११ बजे तक हमने उनका रास्ता देखा, पर आप नहीं पधारे। दूसरे दिन सुबह हमको खबर मिली कि योगशास्त्रीजी महाराज रात को १२ बजे की रेल से भूपाल के लिये रवाना हो गए !

परंतु सबकी हालत ऐसी नहीं होती, सबकी विद्या उत्तर देते-देते क्षीण नहीं हो जाती। जो लोग थियॉसफ़ी-समाज की

'थियॉसफ़िस्ट'-नामक सामयिक पुस्तक के नियमित पढ़नेवाले हैं, जिन्होंने कंबरलैंड साहब के दिखलाए हुए अंतःसाक्षित्व-विद्या-संबंधी चमत्कारों का वर्णन पढ़ा है, जिन्होंने अमेरिका के डॉक्टर डाइस के अलौकिक कृत्यों का समाचार सुना है, वे जान सकते हैं, वे कह सकते हैं, वे विश्वास कर सकते हैं कि इस भूमंडल से अंतर्ज्ञान-विद्या का बिलकुल ही लोप नहीं हो गया, अब भी उसके विद्यमान होने के प्रमाण कहीं-कहीं मिलते हैं। परंतु हाँ, बहुत विरल मिलते हैं।

इस समय हिंदोस्तान में भी इल्म-ग़ैब का जाननेवाला एक प्रसिद्ध पुरुष है। उसकी अंतर्ज्ञान-विद्या बहुत बढ़ी-चढ़ी है। १८९२ ई० में यह पुरुष जीवित था। मालूम नहीं, अब वह है या नहीं। उस समय उसकी उम्र सिर्फ़ ३५ वर्ष की थी। इससे कह सकते हैं कि वह बहुत करके अबतक ज़िंदा होगा। अस्तु। हम उसे ज़िंदा ही समझकर उसके विषय में दो-चार बातें लिखते हैं।

इस पुरुष का नाम गोविंद चेट्टी है। वह मदरास-हाते के कुंभकोण-नगर से ६ मील पर वलिंगमन-नामक गाँव में रहता है। कुंभकोण साउथ इंडियन रेलवे का एक स्टेशन है। गोविंद चेट्टी की मातृ-भाषा तामील है। वह संस्कृत भी थोड़ी जानता है। उस प्रांत में उसका बड़ा नाम है। वह भूत, भविष्य और वर्तमान को सामने रक्खा हुआ देखता है। अर्थात् वह त्रिकालज्ञ है। एक बार उसके विषय में 'थियॉसफ़िस्ट' में एक लेख छपा था। उसमें उसके बतलाए हुए अनेक अद्भुत उत्तरों का

खिक्र था। कर्नल पीकाक-नामक एक साहब एक दिन उससे मिलने गए। वह उसकी अद्भुत विद्या को देखकर अवाक्, चकित और स्तंभित हो गए। उन्होंने 'मदरास-मेल' नाम के अँगरेजी समाचार-पत्र में अपने अनुभव का सविस्तर वृत्तांत प्रकाशित किया है। उसकी नक़ल और भी कई अख़बारों में छप चुकी है। मदरास-हाते के उत्तरी शिक्षा-विभाग के इंस्पेक्टर ने भी गोविंद चेट्टी से मिलकर जिन अचंभे की और अलौकिक बातों का अनुभव किया है, उनका वर्णन उन्होंने भी छपा दिया है।

इस अद्भुत ज्योतिषी, अंतर्ज्ञानी या योगशास्त्री से मिलने एक बार एक महाराष्ट्र पंडित गए। वह सिर्फ़ इसी निमित्त, कोई ५०० मील दूर अपने घर से, वहाँ पहुँचे। जाने के पहले उन्होंने उससे पूछने के लिये अपनी डायरी में बहुत-से प्रश्न लिख लिए। जब वह गोविंद चेट्टी के घर पहुँचे, तब उन्होंने देखा कि उसके यहाँ कई आदमी, सैकड़ों तरह के प्रश्न करने के लिये, बैठे हैं। वह अपने साथ एक दुभाषिए को ले गए थे। वह तामील-भाषा का अनुवाद अँगरेज़ी में और अँगरेज़ी का तामील में करता था। गोविंद चेट्टी का रंग काला, शरीर सबल, मूँछ विरल थे। वह सिर्फ़ धोती पहने था और एक अँगौछा कंधे पर रक्खे था। उसकी बातचीत और मुखचर्या से मालूम होता था कि वह बहुत क्रोधी भी है और लोभी भी। जो लोग वहाँ जमा थे, उनमें से जिसने उसके खातिरख़ाह रुपया नहीं

दिया, उसे उसने अपने कमरे से निकल जाने को कहा, और उसके प्रश्नों का उसने उत्तर नहीं दिया।

जब इस महाराष्ट्र पंडित की बारी आई, तब इससे गोविंद चेट्टी ने पूछा कि तुम कहाँ से आए और क्या चाहते हो। इसका उत्तर मिलने पर उसने कहा कि यदि मैं तुम्हारी सब बातों का ठीक-ठीक जवाब दूँ, तो तुम मुझे क्या दोगे? महाराष्ट्र गृहस्थ ने कहा कि यदि आप ऐसा करेंगे, तो मैं आपकी कीर्ति को महाराष्ट्र-देश-भर में फैलाऊँगा, और यथाशक्ति आपको कुछ दूँगा भी। कुछ देर तक विचार करके चेट्टी ने आगंतुक पंडित के स्वभाव, आचरण और विद्वत्ता आदि की तारीफ़ की। फिर उन्हें वह अपने ख़ास कमरे में ले गया। वहाँ उसने पूछा कि तुम्हारे प्रश्न कहाँ हैं। पंडित ने कहा कि वे हमारी डायरी में लिखे हुए हैं, और वह डायरी हमारे इस बैग के भीतर है। यह सुनकर गोविंद ने चौथाई तख़्ते काग़ज़ पर पेंसिल से उन प्रश्नों का जवाब लिखना शुरू किया, और बिना रुके या बिना किसी सोच-विचार के वह अंधाधुंध लिखता ही गया। इस बीच में वह प्रष्टा से कभी सामने पड़ी हुई कौड़ियों को कहता था छुओ; कभी किसी पुस्तक के किसी अक्षर पर कहता था हाथ रक्खो; कभी कुछ करता था, कभी कुछ। और, यह सब करके वह तरह-तरह के चमत्कार दिखलाता जाता था। अंकों का जोड़ लगवाकर वह बतला देता था कि वह इतना हुआ; या वह अमुक संख्या से कट जाता

है; या उसमें अमुक अंक इतनी दफ़े आया है। इतना करके भी वह अपने हाथ के काग़ज को बराबर रँगता ही जाता था। दोनो काम उसके साथ ही होते थे। जब वह उस काग़ज के दोनो तरफ़ लिख चुका, तब उस पर उसने उस पंडित के दस्तख़त कराए, और उसे उसने उस दुभाषिए के हवाले किया। तब उसने वे लिखे हुए प्रश्न माँगे। पंडित महाशय ने अपना हैंड-बैग खोला, और अपने प्रश्न गोविंद चेट्टी को उन्होंने सुनाए। उनका अनुवाद दुभाषिए ने तामील में किया। उनमें से कुछ प्रश्न ये थे—

१. मेरी स्त्री का नाम क्या है?

२. मेरा पेशा क्या है?

३. मेरी कविता कौन है?

४. मेरे मन में फूल कौन है?

५. मेरे मन में पक्षी कौन है?

६. मेरी और मेरी स्त्री की उम्र कितनी है?

७. जस्टिस महादेव गोविंद रानडे इस समय क्या कर रहे हैं?

सब प्रश्न सुनकर गोविंद चेट्टी ने कहा कि मैंने तुम्हारे सब प्रश्नों का उत्तर दे दिया है। तुम उस काग़ज को पढ़ो, जिसे मैंने तुम्हारे दुभाषिए के सिपुर्द किया है। याद रखिए, प्रश्न बतलाए तक नहीं गए। पर उनका उत्तर पूछनेवाले के दस्तख़त के रूप में सील-मोहर होकर पहले ही से तैयार हो गया! दुभाषिए ने उत्तरों को एक-एक करके पढ़ना और उनका अँगरेज़ी में

अनुवाद करना शुरू किया। फिर क्या था, पूछनेवाले पंडित महाराज आश्चर्य, आतंक, भक्ति और श्रद्धा के समुद्र में लगे डूबने-उतराने। उनके जितने सवाल थे, उन सबका सही जवाब उनको मिल गया। गोविंद चेट्टी की इस अद्भुत अंतःसाक्षित्व-विद्या को देखकर वह चकित हो गए, और पत्र-पुष्प-तुल्य पाँच रुपए उसके सामने रखकर वह उस अलौकिक ज्योतिषी से बिदा हुए। उनकी इस भेंट को गोविंद चेट्टी ने प्रेम-पूर्वक स्वीकार कर लिया।

परोक्षदर्शिता का यह उदाहरण इस देश का है। योरप में भी ऐसे-ऐसे उदाहरण पाए जाते हैं। इस समय योरप में कंबरलैंड साहब का बड़ा नाम है। वह कहते हैं—

"मुझमें कोई ऐसी अद्भुत शक्ति नहीं, जो औरों में न हो। किसी सिद्धि, किसी अलौकिक विद्या, के बल से हम दूसरे के दिल का हाल नहीं मालूम करते। जो शक्ति हममें है, वह और भी बहुत आदमियों में होती है, और यदि वे कोशिश करें, तो वे भी दूसरों के मन की बातें जान सकें। दूसरों के खयालात जान लेना एक प्रकार की बहुत सूक्ष्म-स्पर्शन-शक्ति पर अवलंबित है। जब कोई आदमी कुछ खयाल करता है, किसी चीज की भावना करता है, तब उस पर कुछ ऐसे चिह्न उत्पन्न हो जाते हैं, जिनसे उस खयाल का पता लग जाता है—भावना की गई उस चीज का ज्ञान हो जाता है। कोई आदमी, बिना इस तरह के चिह्नों को प्रकट किए, किसी वस्तु पर अपना

चित्त स्थिर नहीं कर सकता; किसी चीज का ध्यान नहीं कर सकता; किसी विचार में लीन नहीं हो सकता। ऐसा कर सकना सर्वथा असंभव है। इन चिह्नों का ज्ञान उसको तो नहीं होता, जिस पर वे प्रकट होते हैं, पर चित्त की बात जानने की कोशिश करनेवाले को हो जाता है। विचार, ध्यान, भावना या खयाल का कोई रूप नहीं। वे देखे नहीं जा सकते। परंतु शारीरिक चिह्नों से उनका पता जरूर लग जाता है। मैं जब किसी के चित्त पर अंकित हुए खयाल को पढ़ने लगता हूँ, तब मेरी आँखों के ऊपर रूमाल बाँध दिया जाता है। वह सिर्फ इसलिये, जिसमें मेरा चित्त और किसी चीज की तरफ न चला जाय, किसी और कारण से नहीं। मैं औरों के हाथ को सिर्फ छूकर उनके मन का हाल बतला सकता हूँ। यहाँ तक कि बिना छुए और बिना आँख बंद किए भी मैं औरों के दिल की बातें जान सकता हूँ, परंतु चिह्नों ही के द्वारा। हाथ-पैर का हिलना, होठों का फड़कना, पसीने का निकलना, पलकों का गिरना, इत्यादि ऐसे चिह्न हैं, जिनसे चित्त की बात जानने में बड़ी मदद मिलती है।"

यह उक्ति खुद कंबरलैंड साहब के मुँह की है। योरप में जितने बादशाह हैं, प्रायः सबने कंबरलैंड साहब की अंतर्ज्ञान-विद्या का अनुभव किया है, और उसे सही पाया है। इन्होंने हजारों अद्भुत-अद्भुत चमत्कार दिखलाए हैं। उनमें से दो-एक का जिक्र हम यहाँ पर करना चाहते हैं। इन्होंने योरप के

बादशाहों और रानियों आदि के सामने जो परीक्षाएँ दी हैं, जो कौतुक दिखाए हैं, उनका संक्षिप्त वर्णन आजकल 'पियर्सस मैगेज़ीन' में छप रहा है।

एक दिन कंबरलैंड साहब 'पियर्सस मैगेज़ीन' के दफ़्तर में पधारे। वहाँ आपकी परीक्षा हुई। एक आदमी से कहा गया कि वह कल्पना करे कि उसके किसी अंग में दर्द हो रहा है। उसने वैसा ही किया। साहब की आँखें रूमाल से बाँध दी गईं। उन्होंने उस आदमी का हाथ पकड़ा। पकड़ते ही उनके शरीर में वैद्युतिक धारा-सा बही। उनका हाथ पहले कुछ इधर-उधर घूमा। फिर उन्होंने फ़ौरन् ही उस आदमी के बाएँ कान का निचला हिस्सा पकड़ लिया। बस, वहीं उस आदमी ने दर्द होने की मन में भावना की थी। इस बात को देखकर देखने वाले अचरज में आ गए। वे चकित हो उठे। वहाँ पर, उस समय, एक और आदमी बैठा था। उससे कहा गया कि तुम भी किसी चीज़ की भावना करो। उसने एक चीज़ की तसवीर की भावना करनी चाही। सफ़ेद काग़ज़ का एक मोटा तख़्ता दीवार पर लगा दिया गया। कंबरलैंड साहब ने उस आदमी का हाथ अपनी कलाई पर रक्खा, और उससे कहा कि तुम काग़ज़ की तरफ़ देखो, और भावना करो कि तुम उस पर अपनी भावित वस्तु की तसवीर खींच रहे हो। उसने वैसा ही किया। यह उधर उसकी भावना करने लगा, यह इधर हाथ में पेंसिल लेकर उस भावना का चित्र उतारने लगे। एक मिनट में यह परीक्षा पूरी हो गई। देखा गया, तो मालूम

हुआ कि वह चित्र सड़कों पर गड़े हुए एक लालटेन का था। उसी की भावना उस मनुष्य ने की थी; परंतु उसे सोचते समय उसके ब्रैकेट का ख़याल उसे नहीं रहा था। इससे साहब ने जो तसवीर बनाई, उसमें भी ब्रैकेट न था। उनकी इस अद्भुत शक्ति को देखकर सब लोग हैरत में आ गए। इनके सिवा और भी कई प्रमाण उन्होंने अपने अंतर्ज्ञान के दिए।

योरप के धन-कुबेर राथ्स चाइल्ड के यहाँ एक दिन जलसा था। हमारे स्वर्गीय राजेश्वर एडवर्ड सप्तम भी उसमें शरीक थे। कंबरलैंड साहब भी वहाँ उस समय हाज़िर थे। राजेश्वर ने उनके अंतर्ज्ञान की परीक्षा करनी चाही। उन्होंने लंका में मारे गए एक बेपूँछ के हाथी की भावना की। कंबरलैंड ने तत्काल ही उसका चित्र खींच दिया, पर पूँछ उन्होंने नहीं बनाई। पूछने पर मालूम हुआ कि राजेश्वर ने पूँछ की भावना ही नहीं की थी, क्योंकि वह उस हाथी के थी ही नहीं।

हमारे राजेश्वर की महारानी अलेगज़ंडरा एक दफ़े डेन-मार्क में अपने पिता के यहाँ थीं। वहाँ भी किसी मौक़े पर कंबरलैंड साहब पहुँचे। महारानी ने महल के किसी दूसरे हिस्से में रक्खे हुए एक फ़ोटो की भावना की, और यह चाहा कि कंबरलैंड साहब उसे वहाँ से उठा लाएँ। साहब ने कहा, बहुत अच्छा। वह ग्रीस के शाहज़ादे जार्ज के साथ फ़ौरन् वहाँ गए, और उस फ़ोटो को लाकर उन्होंने उसे महारानी के हाथ में दे दिया। इस अलौकिक शक्ति को देखकर सब लोग स्तंभित-से हो गए।

एक दफे रूस के जार ने एक रूसी शब्द की भावना की। कंबरलैंड साहब रूसी भाषा बिलकुल ही नहीं जानते, परंतु उस शब्द को उन्होंने तद्वत् लिख दिया।

कंबरलैंड साहब ने ऐसे ही अनेक राजा-महाराजा और धनी-मानी आदमियों के मन की बातें बतलाकर, लिखकर, चित्र द्वारा खींचकर अपनी अद्भुत अंतर्ज्ञान-विद्या की सत्यता को सिद्ध कर दिखाया है।

मूक प्रश्नों का उत्तर देने और मन की बात बतलाने में केरल-प्रांत के ज्योतिषियों का इस देश में बड़ा नाम रहा है। सुनते हैं, अब भी वहाँ इस विद्या के अच्छे-अच्छे पंडित पाए जाते हैं। और भी कहीं-कहीं ऐसे-ऐसे अंतर्ज्ञानियों का नाम सुन पड़ता है। शाही जमाने में लखनऊ में भी इस तरह के आदमी थे, जो दूसरे के मन का हाल बतला देते थे। कोई २० वर्ष हुए, हमारे मित्र बाबू सीताराम को लखनऊ में ऐसा ही एक वृद्ध मनुष्य मिला था। वह इनसे बिलकुल अपरिचित था। परंतु वह इनका पुराना इतिहास सब बतला गया, और इनके मन की बातों को उसने इस तरह सही-सही कहा, मानो वह इनके हृदय के भीतर घुसकर उनको मालूम कर आया हो। लोगों का विश्वास अब इस विद्या से उठता जाता है, क्योंकि इसके अंदर धूर्तता अक्सर छिपी हुई मिलती है।

एप्रिल, १९०५

४—दिव्य दृष्टि

लंदन से एक मासिक पुस्तक अँगरेज़ी में निकलती है। उसमें अनेक अद्भुत-अद्भुत बातें रहती हैं। विशेष करके अध्यात्म-विद्या से संबंध रखनेवाली बातों की चर्चा उसमें रहती है। उसके एक अंक में दिव्य दृष्टि का एक विचित्र उदाहरण हमने पढ़ा है। उसे थोड़े में हम लिखते हैं—

दिव्य दृष्टि से हमारा मतलब उस दृष्टि से है, जिसमें किसी चीज़ के अवरोध से बाधा न पहुँचे। पदार्थों का सन्निकर्ष चक्षुरिंद्रिय से होने ही से उनका चाक्षुष ज्ञान होता है। यह सर्वसम्मत मत है। पर इसमें अब परिवर्तन की ज़रूरत जान पड़ती है, क्योंकि किसी-किसी विशेष अवस्था में सन्निकर्ष, संघर्ष या योग न होने से भी पदार्थों का ज्ञान हो सकता है। एलिस नाम के एक आदमी के घर पर एक बार तीन आदमी बैठे थे। उनके नाम हैं—फ़ेल्टन, मोरले और गेट्स। इन लोगों को मेस्मेरिज़म अर्थात् अध्यात्म-विद्या से बहुत प्रेम है। इन्होंने दृष्टि-विषयक एक विचित्र तजुर्बा करने की मन में ठानी। मोरले को एक आराम-कुर्सी पर बिठलाकर फ़ेल्टन ने उस पर पाश देना शुरू किया। थोड़ी देर में मोरले सो गया, अर्थात् उसे आध्यात्मिक निद्रा आ गई। इसके बाद वह सचेत किया गया, और उसके सिर के पीछे एक किताब खोली गई। किताब में फ्रेडरिक दि ग्रेट-नामक बादशाह की ज़िंदगी का हाल था। जो पृष्ठ खोला गया, उसमें एक लड़ाई का चित्र था। कितने

ही मरे और घायल सिपाही पड़े हुए दिखलाए गए थे। मोरले से पूछा गया, तुम क्या देखते हो? उसने कहा, मैं एक तसवीर देख रहा हूँ, जिसमें बहुत-से सिपाही इधर-उधर पड़े हुए हैं। इस बात को सुनकर कमरे में जितने आदमी थे, सबको आश्चर्य हुआ। इसी तरह की एक और तसवीर के विषय में भी उससे प्रश्न किया गया। इस तसवीर को भी उसने पहचान लिया। याद रहे, यह तसवीर उसकी आँखों के सामने न थी; बल्कि उसके पीछे, सिर की तरफ़, थी। मानो मोरले की आँखें उसके सिर के पीछे थीं, चेहरे पर नहीं। इसी तरह और भी उसकी कई परीक्षाएँ हुईं, और प्रायः सबमें वह पास हो गया। जो तसवीर उसको दिखलाई जाती थी, वह उसकी पीठ की तरफ़, सिर से कोई गज़-भर के फ़ासले पर, रक्खी जाती थी, बहुत पास भी नहीं। तिस पर भी वह उसे पहचान लेता था।

इसके बाद और तरह से भी उसकी परीक्षा लेना निश्चय हुआ। मोरले से कहा गया कि गेट्स कमरे के बाहर चला गया है। यह कथन झूठ था। गेट्स कमरे के भीतर ही था, पर मोरले ने इस बात पर विश्वास कर लिया। उस कमरे में एक घड़ी लगी थी। गेट्स उसके सामने इस तरह खड़ा हो गया कि घड़ी उससे ढक गई। अर्थात् घड़ी का डायल उसकी पीठ के पीछे हो गया, और उसके काँटे लोगों की नज़र से छिप गए। तब मोरले से पूछा गया, बतलाइए, क्या वक़्त है? मोरले ने दीवार पर लगी हुई घड़ी का वक़्त ठीक-ठीक बतला

दिया। गेट्स इस घड़ी के सामने खड़ा था। पर मोरले की दृष्टि से वह लोप था; अथवा वह पारदर्शक हो गया था!

इसके बाद मोरले से एलिस बातें करने लगा, और गेट्स तथा फ़ेल्टन ज़रा देर के लिये कमरे के बाहर चले गए। बाहर जाकर उन्होंने अपने कोट परस्पर बदल डाले। फ़ेल्टन ने गेट्स का कोट पहना और गेट्स ने फ़ेल्टन का। यह करके वे फिर कमरे के भीतर आए। गेट्स ने क्या किया कि फ़ेल्टन का कोट पहने हुए वह कमरे में इधर-उधर घूमने लगा। यह उसने इसलिये किया, जिसमें मोरले की नज़र उस पर पड़े। मोरले इस समय एलिस से बातें कर रहा था। पर गेट्स को देखते ही वह क़हक़हा मारकर हँस पड़ा। उसने गेट्स को तो न देखा, पर फ़ेल्टन के कोट को, जो गेट्स के बदन पर था, देख लिया। जब मोरले की हँसी रुकी, तब एलिस ने पूछा, मामला क्या है? क्यों इतने ज़ोर से हँसे? उसने कहा, अजी, वह कोट निराधार आकाश में उड़ रहा है! क्या तुम्हें वह नहीं देख पड़ता? तुम अजब आदमी हो। क्या तुम अंधे हो? मतलब यह कि मोरले ने गेट्स को तो नहीं देखा, क्योंकि पूर्व वासना के अनुसार वह उसकी दृष्टि से अदृश्य हो चुका था, पर उसने देख लिया। इसी से उसको कोट निराधार मालूम हुआ। तब उसका ध्यान फ़ेल्टन की तरफ़ आकृष्ट किया गया। उसने गेट्स का कोट पहन रक्खा था। वह कोट मोरले को नहीं देख पड़ा। मोरले ने फ़ेल्टन को सिर्फ़ क़मीज़ पहने देखा।

इसी तरह और भी कितनी ही परीक्षाएँ हुईं। मोरले की नजर से चिट्ठियाँ, मोमबत्तियाँ, तंबाकू, बिल्ली और एक की, सब चीजें, सिर्फ झूठ विश्वास दिलाने ही से अदृश्य हो गईं। एक स्त्री कमरे में आ गई थी। उसके बारे में मोरले से कहा गया कि वह चली गई। इस पर उसने विश्वास कर लिया, और वह स्त्री सचमुच ही उसकी नजर से गायब हो गई। यहाँ तक कि मोरले जब आराम-कुर्सी से उठकर दूसरी जगह जाने लगा, तब रास्ते में उस स्त्री के पैर से ठोकर खाकर गिरने से बचा!

आध्यात्मिक निद्रा से जगने पर मोरले की यह विलक्षण शक्ति जाती रही।

इन परीक्षाओं से सिद्ध होता है कि जगत् के मिथ्या होने का उपदेश जो वेदांत देता है, वह बहुत दुरुस्त है। इस संसार के सारे पदार्थ मायामय हैं; केवल कल्पना-प्रसूत हैं; उनमें कुछ भी सार नहीं। सब चीजों का अस्तित्व केवल खयाली है। उस खयाल को किसी तरह दूर कर देने से वे चीजें भी आदमी की दृष्टि में अभाव को प्राप्त हो जाती हैं। जिसका यह खयाल दृढ़ हो जाता है कि जगत् सचमुच ही मिथ्या है, और उसमें जितने पदार्थ हैं, सचमुच ही काल्पनिक हैं, वह दिव्य दृष्टिवान् हो जाता है। जड़ पदार्थों का व्यवधान उसकी दिव्य दृष्टि को बाधा नहीं पहुँचा सकता।

मार्च, १९०६

५.—परिचित्त-विज्ञान-विद्या

बेतार की तारबर्क़ी का प्रचार हुए अभी थोड़ा ही समय हुआ। इसमें तार लगाने की ज़रूरत नहीं पड़ती। सिर्फ़ दो यंत्रों से ही काम निकल जाता है। इस तारबर्क़ी के सिद्धांतों को ढूँढ़ निकालने का दावा तो कई आदमी करते हैं, पर सबमें इटली के मारकोनी साहब ही प्रधान हैं। क्योंकि उन्हीं के सिद्धांतों के अनुसार इस तारबर्क़ी का अधिक प्रचार है। जान पड़ता है, किसी दिन मारकोनी की मिहनत ख़ाक में मिल जायगी। इस तारबर्क़ी की ज़रूरत ही न रह जायगी। लोग एक दूसरे के मन की बात घर बैठे आप-ही-आप जान लेंगे! जो ख़बर जिसके पास चाहेंगे, इच्छा करते ही भेज सकेंगे। जो बात पूछनी होगी, मन-ही-मन पूछ लेंगे। जिस विद्या से ये बातें संभव समझी गई हैं, उसका नाम है परि-चित्त-विज्ञान-विद्या। इसका ज़िक्र 'अंतःसाक्षित्व-विद्या' पर लिखे गए लेख में आ चुका है।

अँगरेज़ी में एक मासिक पुस्तक है। उसका नाम है—'रिव्यू ऑफ़ रिव्यूज़'। यह पुस्तक बहुत प्रतिष्ठित है। इसके संपादक हैं डब्लू० टी० स्टीड साहब। संसार में आपका बड़ा नाम है। भारत के आप बड़े ही हितैषी हैं। आपने परिचित्त-विज्ञान का, प्रत्यक्ष देखा हुआ, एक वृत्तांत अपने मासिक पत्र में प्रकाशित किया है। उसका सारांश हम यहाँ पर थोड़े में देते हैं। आपकी कथा आप ही के मुँह से सुनिए—

मुझे इस बात का पूरा विश्वास था कि यदि दो आदमियों के चित्त एक हों, तो वे परस्पर एक दूसरे के मन की बात, हजारों कोस दूर रहने पर भी, जान सकते हैं। पर मैं अब तक यही समझता था कि मन की अर्द्ध-सज्ञान दशा में ही यह बात हो सकती है, अन्यथा नहीं। मैं अब तक न जानता था कि साधारण तौर पर, चित्त की संपूर्ण सज्ञान अवस्था में भी, यह बात संभव है। पर डेनमार्क के रहनेवाले जान-सिंग साहब और उनकी स्त्री ने मेरा यह संदेह दूर कर दिया। मुझे अब विश्वास हो गया है कि दो चित्तों का ऐक्य होने से कोई भी आदमी, सज्ञान अवस्था में भी, परस्पर एक दूसरे के अंतःकरण की बात जान सकता है।

जानसिंग और उनकी स्त्री की उम्र ४० वर्ष की होगी। वे अच्छी तरह अँगरेजी बोल सकते हैं। वे एक ही गाँव के रहने-वाले हैं। लड़कपन में एक ही साथ उन्होंने खेला-कूदा और पढ़ा-लिखा है। नौकरी भी दोनो ने, कुछ समय तक, अमेरिका में, एक ही आदमी के यहाँ की है। दोनो का मन मिल जाने से उन्होंने शादी कर ली। इस बात को हुए १६ वर्ष हुए। शादी होने के बाद, पति-पत्नी का मन यहाँ तक एक हो गया कि पत्नी अपने पति के मन की बातें, बिना बतलाए ही, जानने लगी। जब जानसिंग को दृढ़ विश्वास हो गया कि उनकी स्त्री उनके मन की बातें जान लेती है, तब उन्होंने नौकरी छोड़ दी, और अपनी स्त्री के परचित्त-ज्ञान की बदौलत रुपया

कमाने की ठानी। चार वर्ष तक वे अमेरिका में घूमते और तमाशा दिखाते रहे। परंतु किसी ने इस बात की जाँच न की कि क्या कारण है, जो ज़ानसिग की स्त्री अपने पति के मन की बात जान लेती है। ज़ानसिग या उनकी स्त्री ने भी इस बात का दावा न किया कि वे किसी विलक्षण विद्या के बल से यह काम कर सकते हैं। उन्होंने अपने को मदारी, या एक प्रकार का जादूगर, ज़ाहिर किया, और तमाशा देखनेवालों ने उन्हें वही समझा।

आख़िरकार देश-देशांतरों में घूमते-फिरते वे लंदन पहुँचे। वहाँ उन्होंने हज़ारों आदमियों के सामने, एक नाटकघर में, अपने करिश्मे दिखाए। हम भी अपने एक मित्र को साथ लेकर तमाशा देखने गए। पहले और खेल होते रहे। कुछ देर में ज़ानसिग की बारी आई। वे दोनों रंगमंच पर सबके सामने आकर उपस्थित हुए। ज़ानसिग की स्त्री के पास, तिपाई पर, एक स्लेट रक्खी गई, और उसके हाथ में खड़िया-मिट्टी का एक टुकड़ा दिया गया। इसके बाद भूमिका के तौर पर दो-चार बातें कहकर ज़ानसिग साहब चबूतरे से उतरकर नीचे दर्शकों के पास आ गए। उन्होंने कहा—आप लोग मुझे कोई चीज़ दीजिए, कोई नाम बतलाइए, कोई संख्या उच्चारण कीजिए; मैं अपनी स्त्री की तरफ़ पीठ किए खड़ा हूँ। आप चुपचाप मुझे जो चीज़ देंगे या जो नाम या संख्या बतलावेंगे, उसे मेरी स्त्री स्लेट पर लिख देगी। चाक़ू, घड़ी, दियासलाई, रूमाल, रुपया-पैसा आदि अनेक चीज़ें लोग ज़ानसिग को देने लगे। चीज़ों की वर्षा-सी

उसके हाथ पर होने लगी। जहाँ उसके हाथ पर कोई चीज़ रक्खी गई, या जहाँ कोई चीज़ उसे दिखाई गई, तहाँ उसकी स्त्री ने उसका नाम स्लेट पर लिखा। इसके बाद काग़ज़ के टुकड़ों पर या कार्डों पर पेंसिल से संख्याएँ लिखकर दर्शकों ने ज्ञानसिंग को दिखाना शुरू किया। उधर उसकी स्त्री ने तत्काल ही उन संख्याओं को यथाक्रम स्लेट पर लिखना आरंभ किया। एकआध दफ़े उसने ग़लती की। अँगरेज़ी ३ को उसने ८ लिखा, और ६ का ६। इसका कारण इन अंकों के आकार की समानता थी। पर प्रायः उसने और सब संख्याएँ सही लिखीं। लंबी-लंबी संख्याएँ लोगों ने काग़ज़ पर लिखीं। उन्हें मन-ही-मन पढ़ने में ज्ञानसिंग को थोड़ी-बहुत कठिनता भी हुई; पर उसकी स्त्री को, उन्हें स्लेट पर लिखने में, ज़रा भी कठिनता न हुई। ज्ञानसिंग इधर-उधर दर्शकों के बीच दौड़ता रहा। कभी इस चीज़ को देखा, कभी उस चीज़ को। उधर उसकी स्त्री सबके नाम साफ़-साफ़ स्लेट पर लिखकर दर्शकों को आश्चर्य के महासमुद्र में डुबोती रही। कुछ देर में ज्ञानसिंग मेरे पास बैठे हुए मेरे एक मित्र के पास आया। बोला—"कुछ दीजिए। बैंक का नोट, या जो आपके मन में आवे।" मेरे मित्र ने एक कोरी चेक निकाली।

ज्ञानसिंग ने पूछा—"यह क्या है?"

"यह एक चेक है।"

"कितने की है?"

"कितने की भी नहीं ; कोरी है।"

"इसका नंबर क्या है ?"

नंबर बतलाने पर उसकी स्त्री ने स्लेट पर एक के बाद एक अंक सही-सही लिख दिए। इसे हाथ की चालाकी या और कोई बात न समझिए। पर यह चित्त-विज्ञान का फल था। जानसिंग और उसकी स्त्री का चित्त दूध-बूरे की तरह एक हो रहा था। इसी से जानसिंग के मन की बात उसकी स्त्री को तत्काल मालूम हो जाती थी। पर विशेषता यह थी कि स्त्री के मन की बात जानसिंग नहीं जान सकता था।

इन लोगों की अच्छी तरह परीक्षा करने के इरादे से मैं जानसिंग और उसकी स्त्री के साथ एक अलग कमरे में गया। वहाँ जाकर मैंने जानसिंग की स्त्री को पड़ोस के कमरे में अपने एक मित्र के साथ बिठलाया। उसे स्लेट-पेंसिल दी। दूसरे कमरे में मैं जानसिंग के पास बैठा। इस कमरे में एक और शख्स भी थे। उन्होंने स्लेट पर एक ही लाइन में ८ अंक लिखे। स्लेट मैंने जानसिंग के हाथ में दी। उसने एक-एक अंक को क्रम-क्रम से ध्यान-पूर्वक देखना शुरू किया। जैसे-जैसे वह देखता गया, वैसे-ही-वैसे दूसरे कमरे से उसकी स्त्री एक-एक अंक उच्चारण करती गई। याद रखिए, दोनों कमरों के बीच दो दरवाज़े थे। और भी कितनी ही परीक्षाएँ हम लोगों ने कीं। सबमें जानसिंग की स्त्री पास हो गई। जानसिंग ने एक बार अपनी स्लेट पर एक वृत्त बनाया।

उसके ऊपर उसने एक त्रिकोण खींचा। उधर दूसरे कमरे में जानसिंग की स्त्री ने ये ही शकलें स्लेट पर खींच दीं! मैंने अपनी स्लेट पर पक्षी का एक चित्र बनाया। इस पर जानसिंग की स्त्री दूसरे कमरे से बोल उठी—"मैं चित्र खींचना नहीं जानती, फिर किस तरह मैं स्लेट पर चिड़िया बना सकती हूँ।"

मैंने इन लोगों की और भी परीक्षा करने का निश्चय किया। इसलिये मैंने उन्हें अपने मकान पर खाना खाने के लिये निमंत्रण दिया। निमंत्रण उन्होंने क़बूल कर लिया। यथा-समय वे मेरे यहाँ आए। मकान पर मैंने और कई आदमियों को बुला रक्खा था। खाना खा चुकने पर हम लोग बैठक में आए। वे दोनो पति-पत्नी अलग-अलग कमरों में कर दिए गए। मैंने जानसिंग को अनेक चीज़ें दिखलाईं, अनेक नाम बतलाए, अनेक संख्याएँ लिख-लिखकर दीं। मेरा दिखलाना था बैसा था कि उधर उसकी स्त्री ने उनके नाम अपनी स्लेट पर लिख दिए। मेरे मित्र ने तीन नाम, एक दूसरे के नीचे लिखकर, जानसिंग को दिए। उसकी स्त्री ने वे ही नाम, उसी क्रम से, स्लेट पर लिख दिए। मेरे मित्र ने जानसिंग को जेब-घड़ी की एक छोटी-सी चाभी दी। उस पर बनानेवाले का नाम 'हंट', बहुत छोटे-छोटे अक्षरों में, था। यह मुश्किल से पढ़ा जा सकता था। उसकी स्त्री ने दूसरे कमरे से आवाज़ दी—यह घड़ी की चाभी है। इसका नाम है 'हंट'! आठ-आठ संख्याओं की कई सतरें स्लेट पर लिखकर जानसिंग को

दिखलाई गईं। उन्हें भी उसकी स्त्री ने सही-सही लिख दिया। इसके बाद मैंने अपनी जेब से एक बहुत पुराना नोट निकाला। जब मैं 'हालोवे'-जेल से छूटा था, तब यह नोट मुझे एक लेडी ने दिया था। तब से मैं इसे हमेशा अपनी पॉकेट में ही रखता आया हूँ। पुराना होने के कारण यह बहुत मैला हो गया है। इसके नंबर वगैरह मुश्किल से पढ़ जाते हैं। इसे मैंने जानसिंग के हाथ में दिया। उसने अपनी स्त्री से पुकारकर पूछा—"यह क्या चीज़ है ?" इस बात को न भूलिएगा कि स्त्री दूसरे कमरे में थी। कमरे के बीच में पर्दा पड़ा था। स्त्री ने जवाब दिया—"नोट है।" इसकी तारीख ? जवाब मिला—"२ जुलाई, १८८५।" और नंबर ? स्त्री ने कहा—"पहले ५ है, फिर ६, फिर ८, फिर ४।" पर्दा उठाकर ये जो उसकी स्लेट देखी गई, तो उस पर लिखा था—५६८४। ये सब बातें बिलकुल सही थीं। इसके पहले ही जानसिंग की स्त्री ने कहा था कि यह नोट आग में झुलस-सा गया है। यह बात भी एक तरह ठीक थी। नोट झुलस तो नहीं गया था, पर २० वर्ष से लगातार पॉकेट में, नोटबुक के भीतर, रहने से उसका रंग बिलकुल ही उड़ गया था, और मालूम होता था कि ज़रूर धुएँ से खराब हो गया है। और भी कई परीक्षाएँ मैंने कीं, और सबमें जानसिंग की स्त्री उत्तीर्ण हो गई।

इन सब परीक्षाओं से मेरा संदेह दूर हो गया। मैंने समझ लिया कि परिचित्त-विज्ञान के सिवा और कोई भेद इसमें नहीं।

ये लोग पास-ही-पास इस विषय की परीक्षाओं की जाँच करने देते हैं, बहुत दूर जाकर नहीं। अर्थात् एक दूसरे से दो-चार मील दूर जाकर ये अपनी करामात नहीं दिखलाना चाहते। ये कहते हैं कि पास-पास रहकर ही हम इस तरह के करिश्मे दिखलाकर रुपया पैदा करते हैं, दूर नहीं जाना चाहते। संभव है, दूर जाने से हम लोग अपनी इस अलौकिक शक्ति को खो दें। ऐसा होने से हमारा बड़ा नुक़सान होगा। यदि हमारी जीविका का और कोई जरिया होता, तो हम ऐसा भी करते। पर इस समय हमारी अवस्था जैसी है, उसके ख़याल से हमें डर लगता है कि कहीं ऐसा न हो, जो हम परीक्षा के झगड़े में पड़कर इस परिचित्त-विज्ञान की शक्ति को खो बैठें।

परंतु परिचित्त-विज्ञान-विद्या झूठी नहीं, सच है। उसके बल से मनुष्य हज़ारों कोस दूर बैठकर भी औरों के मन का हाल जान सकता है। सौभाग्य से मुझे इसका भी प्रमाण मिला है। अमेरिका के जार्जिया-प्रांत में अटलांटा-नामक एक शहर है। उसमें ऐंड्रू मेकडानल नाम के एक साहब रहते हैं। उन्होंने, अभी कुछ ही दिन हुए, मेरे पास प्रकाशित होने के लिये एक लेख भेजा है। उसमें उन्होंने लिखा है कि वह कुमारी मेबल रे नाम की एक स्त्री से, १२०० मील की दूरी से, बात-चीत कर सकते हैं। पहले उनको इतनी दूर से बातचीत करने का अभ्यास न था। यह अभ्यास धीरे-धीरे बढ़ा है। मुझे

विश्वास है कि लेखक का कहना ठीक है। वह समय नज़दीक जान पड़ता है, जब इस विद्या के तत्त्व अच्छी तरह लोगों के ध्यान में आ जायँगे, और अभ्यास करते-करते लोग सैकड़ों कोस दूर रहनेवाले अपने इष्ट-मित्रों से, बिना किसी कठिनाई के, बातचीत कर सकेंगे।

मनुष्य के मस्तिष्क में जो ज्ञानागार है, वह और कुछ नहीं, सिर्फ़ एक प्रकार की बिजली की शक्ति का खज़ाना है। उसी शक्ति की प्रेरणा से, इच्छा करते ही, आदमी हाथ-पैर हिला सकता है, और अपने अंगों का आकुंचन और प्रसारण कर सकता है। किसी बात की चिंतना करने या किसी बात को सोचने से भी बिजली का प्रवाह ज्ञानागार से बह निकलता है। विश्वव्यापी ईथर-नामक पदार्थ में भी बिजली की शक्ति है। उस शक्ति से मस्तिष्क की वैद्युतिक शक्ति का सम्मेलन होने पर उस प्रवाह का लगाव हज़ारों क्या, लाखों कोस दूर तक हो सकता है। इस दशा में, किसी और जगह पर दूर रहनेवाले आदमी के मस्तिष्क से प्रवाहित होनेवाली वैद्युतिक शक्ति का प्रवाह भी यदि उसी परिमाण में प्रवाहित हो, तो दोनों एक होकर एक दूसरे के मन की बात तत्काल जान सकते हैं। मारकोनी की बेतार की तारबर्क़ी भी इसी सिद्धांत का अनुसरण करती है। मनुष्य के मस्तिष्क में जो छोटे-छोटे दाने हैं, उनमें बिजली की शक्ति है। उनमें वे ही गुण हैं, जो मारकोनी की बेतार की तारबर्क़ी के यंत्रों में हैं। ये यंत्र दो होते हैं—

एक खबर भेजने के लिये, दूसरी खबर लेने के लिये। दोनो का वैद्युतिक बल तुल्य होता है। तुल्यबलत्व ही इस तारबर्क़ी का मूल-मंत्र है। यदि किसी की मानसिक बिजली का प्रवाह विशेष शक्तिशाली हो जाय, और वैसी ही शक्ति किसी और आदमी के भी मस्तिष्क में पैदा होकर दोनो में तुल्यबलत्व उत्पन्न हो जाय, तो वे दोनो, सहज ही में, परस्पर एक दूसरे से दूर रह-कर भी, बातचीतकर सकें। इसमें समान भाव की बड़ी जरूरत है। इसमें कोई संदेह नहीं कि बिजली की शक्ति हर आदमी में है। यदि दो आदमी उसे अधिक बलवती करके अपनी मान-सिक बिजली की शक्ति को एक ही दरजे का कर दें, तो उनके मन एक हो जायँ। मन की एकता होते ही उनका मानसिक भेद दूर हो जाय। यह अवस्था प्राप्त होते ही एक दूसरे के मन की बात जानने में जरा भी कठिनाई न पड़े। विद्युन्मय मानसिक शक्ति को बढ़ाकर भिन्न-भिन्न चित्तों की विद्युन्मात्रा को एक कर देना ही परिच्चित्त-विज्ञान-विद्या का मूलहै।

जानसिग साहब ने लंदन के 'डेलीमेल' पत्र में अपनी ज़िंदगी का हाल प्रकाशित किया है। उससे मालूम होता है कि आप अपनी स्त्री के साथ किसी समय भारतवर्ष भी आए थे, और कलकत्ता, बंबई आदि नगरों में अपने परिच्चित्त-विज्ञान का तमाशा दिखाया था। आपने इस देश के योगियों और ऐंद्रजालिकों की बड़ी तारीफ़ की है। आप कहते हैं—

एक दिन हम लोगों ने एक राजा को और उसकी सभा के

सभासदों को तमाशा दिखाया। देखनेवाले बहुत ख़ुश हुए। मुझे बड़ी शाबाशी मिली। जब हम अपने होटल को लौट आए तब, कुछ देर बाद, एक सज्जन हमसे मिलने आए। वह मुझसे अच्छी अँगरेज़ी बोलते थे। उन्होंने कहा—"तुम देर तक ध्यानस्थ नहीं रहते। तुम्हें चित्त की एकाग्रता बढ़ानी चाहिए। तुम्हारे लिये इसकी बड़ी ज़रूरत है। तुम मांस बहुत खाते हो। मांस खाना, मानसिक शक्तियों की वृद्धि के लिये हानिकारी है। तुम उपवास भी यथेष्ट नहीं करते, और न प्राणायाम द्वारा अपने मन और शरीर को शुद्ध ही करते हो। इसमें संदेह नहीं कि तुममें एक अद्भुत शक्ति है, पर अफ़सोस! तुम उसका सदुपयोग करना नहीं जानते।"

इसके बाद मैंने देखा कि वह आगंतुक व्यक्ति अधर में ऊपर उठ गया, और बिना किसी आधार के, ज़मीन से तीन-चार फ़ीट ऊपर हवा में ठहरा हुआ, हमारी तरफ़ देखकर चुपचाप मुस्किराता रहा। मैंने हिंदोस्तान में अनेक अद्भुत-अद्भुत बातें देखीं। उनमें से यह भी एक थी। एक बार हमने अपने एक नौकर को, भारतवर्ष में, उसकी इच्छा के प्रतिकूल, बरख़ास्त कर दिया। बंबई में जब हम लोग गाड़ी पर सवार हुए, तब वह हमें पहुँचाने आया। उसे मैंने स्टेशन पर ही छोड़ दिया। पर जब हम लोग ठिकाने पर पहुँचे, और वहाँ स्टेशन पर गाड़ी खड़ी हुई, तब उसी आदमी ने आकर हमारी गाड़ी का दरवाज़ा खोला! यह देखकर हम लोगों को बड़ी

हैरत हुई। हिंदोस्तान में हम लोगों को योगियों और ऐंद्रजालिकों के करतब देखने के अनेक मौक़े मिले। आध्यात्मिक बातों में हिंदू बहुत बढ़े-चढ़े हैं। हम लोगों ने अनेक देश घूम डाले, पर सबसे पहले हमें हिंदोस्तान ही में ऐसे आदमी देखने में आए, जिन्होंने हमारे परिचित्त-विज्ञान-विषयक कर्तव्यों को देखकर कुछ भी आश्चर्य नहीं प्रकट किया। उन्होंने समझ लिया कि जिन आध्यात्मिक और मानसिक सिद्धियों की खोज और साधना में उनके देशवाले अनंत काल से लगे आए हैं, उन्हीं में से हमारी परिचित्त-विज्ञान-विद्या भी एक सिद्धि है। यदि ब्राह्मण और बौद्ध विज्ञानी इस विद्या को मानते हों, तो कुछ कहना ही नहीं, अन्यथा हम इसकी कुछ भी क़ीमत नहीं समझते।

जिस देश के योगी योग द्वारा 'साक्षात् परब्रह्मप्रमोदार्णव' में निमग्न हो जाते हैं, उनके लिये दूसरे के मन की बात जान लेना कौन बड़ा कठिन काम है? पर इस समय ऐसे योगी दुर्लभ हो रहे हैं।

फ़रवरी, १६०७

६—परलोक से प्राप्त हुए पत्र

एक ज़माना वह था, जब कानपुर से कलकत्ते चिट्ठी का पहुँचना मुश्किल था, और यदि पहुँचती भी थी, तो महीनों लग

जाते थे। अब गवर्नमेंट के सुप्रबंध की बदौलत पाँच मिनट में वहाँ खबर पहुँचती है। पुराने ज़माने का मुक़ाबला आज-कल से करने पर जमीन-आसमान का अंतर देख पड़ता है। परंतु रेल और तार का प्रचार हुए बहुत दिन हो गए। इससे इन बातों को देखकर अब विशेष आश्चर्य नहीं होता। हाँ, एक बात सुनकर हमारे पाठकों को शायद आश्चर्य हो। वह बात पृथ्वी से परलोक तक तार लग जाना है। यह अदृश्य तार है, पर खबरें इससे आने लगी हैं। यदि इसी तरह उन्नति होती गई—और इस उन्नति के ज़माने में ऐसा होना ही चाहिए—तो शायद किसी दिन परलोक तक रेल भी खुल जाय, और डाकखाने खुलकर वहाँ और यहाँ के डाकखानों का मेल हो जाय। नई अध्यात्म-विद्या चाहे जो करे।

इँगलैंड से एक मासिक पुस्तक निकलती है। उसका नाम है ब्रॉड व्यूज़ (Broad Views)। उसमें एक लेख आध्यात्म-विद्या पर निकला है। उसका सारांश हम नीचे देते हैं। लेख का अधिकांश परलोकवासी लॉर्ड कारलिंग फ़र्ड के भेजे हुए पत्र हैं। 'ब्रॉड व्यूज़' के संपादक ने पढ़नेवालों को विश्वास दिलाया है कि ये पत्र जाली नहीं, सच्चे हैं।

आयरलैंड में लॉर्ड कारलिंग फ़र्ड एक प्रसिद्ध राजकीय पुरुष हो गए। १८९८ ईस्वी में उनकी मृत्यु हुई। वह पार्लियामेंट के मेंबर और ट्रेज़री (खज़ाने) के लॉर्ड रह चुके थे। मरने के बाद उन्होंने अपने कुटुंब की एक स्त्री द्वारा परलोक से

खबरें भेजना शुरू कीं। इस स्त्री को अध्यात्म-विद्या का शौक़ था। वह बहुत अच्छी 'पात्र' थी। उसके शरीर में परलोक-गत आत्माएँ प्रवेश करके इस लोकवालों से बातचीत करती थीं। कुछ दिन तक तो इस स्त्री के द्वारा लाट साहब खबरें भेजते रहे। कुछ दिन में एक और स्त्री की 'पात्रता' को उन्होंने पसंद किया। इस विषय में इस स्त्री की शक्ति खूब बढ़ी-चढ़ी थी। सात वर्ष तक लाट साहब की चिट्ठियाँ आती रहीं, और इस नए 'पात्र' के हाथों से लिखी जाती रहीं। लाट साहब के कुटुंब की जिस स्त्री के पास ये पत्र थे, उसने 'लाँड न्यूज़' के संपादक को उन्हें प्रकाशित करने के लिये अनुमति दे दी। इससे वे अब प्रकाशित किए जा रहे हैं। संक्षेप में, उनमें कही गई बातें, सुनिए—

जिन बातों को मैं पृथ्वी पर, पंचभूतात्मक शरीर में रहकर, नहीं जान सका, उन्हें अब मैंने जान लिया है। मैं अब परमानंद में मग्न हूँ। पृथ्वी पर मैं सोया था; अब मैं जाग रहा हूँ। मुझे सख्त अफ़सोस है, मैंने अपना मानव-जीवन स्वार्थ और बुरी बातों में व्यर्थ खो दिया। अपार दुःखों से मेरा जीवन भारभूत हो गया था। मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी। निराशा मुझ पर छाई हुई थी।

जब मैं पिछली बातें याद करता हूँ, मुझे बड़ा दुःख होता है। मेरी स्वार्थ-बुद्धि बेहद बढ़ी हुई थी। परंतु अब मैं इस लायक़ हो गया हूँ कि पुरानी भूलों का निराकरण कर सकूँ।

मुझे अभी बहुत कुछ करना है। मेरा भविष्य आशा और आनंद से भरा हुआ है। भविष्य में मैं अपनी अनेक महत्त्वाकांक्षाओं को पूरा करने की आशा रखता हूँ।

मनुष्य-जीवन को एक तरह का स्कूल समझना चाहिए, परंतु जिस अवस्था में मैं अब हूँ, उसकी बात बिलकुल ही भिन्न है। जो बातें पृथ्वी पर स्वप्न-सी मालूम होती थीं, वे यहाँ करतलामलकवत् हो रही हैं। जीवन के उद्देश्य, शिक्षण और फल का ज्ञान यहाँ अच्छी तरह होता है। जितने सत्कर्म और सदुद्देश्य हैं, वे यहाँ पूरे तौर पर सफल हो सकते हैं। परमात्मा की सृष्टि की रचना और उद्देश्य आदि यहाँ समझ में आने लगते हैं। पृथ्वी पर इन बातों का समझना कठिन था।

मुझे यह बात अब अच्छी तरह मालूम हो गई है कि आदमी की जिंदगी सिर्फ उसी के फ़ायदे के लिये नहीं। उसे समझना चाहिए कि जो कुछ संसार में है, वह सब उसी का है; और वह खुद भी संसार ही का एक अंश है। इन बातों को ध्यान में रखकर उसे सब काम करने चाहिए। स्वार्थ से कर्तव्य की हानि होती है। कर्तव्य-विघात ही का दूसरा नाम स्वार्थ है। संसार बहुत विस्तृत है। जो अपना कर्तव्य करना चाहते हैं, संसार में उनके लिये काम-ही-काम है। विश्वरूप ईश्वर ही में सब कुछ है। जो कुछ है, उसे उसी के अंतर्गत समझना चाहिए। भिन्न भाव रखना अज्ञानता का चिह्न है, मैं और मेरा पिता (परमेश्वर) भिन्न-भिन्न नहीं, एक ही हैं। "सर्वं खल्विदं ब्रह्म।"

मेरी दृष्टि अब बहुत विस्तृत हो गई है। मैं अपने सामने अनंत ज्ञान-राशि देखकर घबरा रहा हूँ। जो चीजें मुझे अनंत, आश्चर्य-पूर्ण और अंधकारमय मालूम होती थीं, वे मुझे अब वैसी नहीं मालूम होतीं। उनको अब मैं बखूबी देख सकता हूँ, और उन्हें समझ भी सकता हूँ।

पृथ्वी पर ७० वर्ष की उम्र पाकर आदमी इन सब बातों को नहीं जान सकता।

आध्यात्मिक विषयों में अनेक बातें गुप्त हैं। मनुष्य उन सबको नहीं जान सकता। आत्मा ईश्वर का अंश है। वह मनुष्य-शरीर से भिन्न है। वह अपना अस्तित्व अलग ही रखती है। वह अनादि है। वह हमेशा आगे की ओर बढ़ती है, पीछे की ओर नहीं। वह धीरे-धीरे अपनी उन्नति करती जाती है, और अपनी शांति और अनुभव को बढ़ाती रहती है। मनुष्य का मन और आत्मा तभी उन्नत होते हैं, जब जीवन के अनेक झंझटों को वे धैर्य के साथ सह लेते हैं, और उनको पार करके आगे निकल जाते हैं।

परमात्मा की असीमता का अंदाजा बहुत कम आदमियों को है। उसकी सीमा नहीं। वह सब तरफ है। कोई जगह उससे खाली नहीं। इस विश्व का कोई अंश ऐसा नहीं, जो उसके अंतर्गत न हो। जो सुख या दुख हमको मिलता है, वह इसलिये कि उससे हम कुछ-न-कुछ शिक्षा ले सकें।

यह मनुष्य-शरीर अनेक जन्म-मरणों का फल है। लोग

व्यर्थ इधर-उधर दौड़ा करते हैं। उनको खबर ही नहीं कि जिसकी उन्हें खोज है, वह उन्हीं के हृदय में है।

यहाँ पर बैठा हुआ मैं अपने को उसी रूप में देख रहा हूँ, जो मेरा यथार्थ रूप है। हम सब पूर्ण परमात्मा के एक अंश हैं। यह बात मैंने यहाँ आने पर जानी। आदि-अंत की भावना मनुष्य की कल्पना है। न कभी किसी चीज़ का आदि था, और न किसी चीज का अंत ही है। मुझे इस बात का पता नहीं कि कभी किसी लोक या ग्रह की उत्पत्ति एकदम हो गई हो। जितनी चीज़ें हैं, सब क्रम-विकास-पूर्वक एक स्थिति से दूसरी स्थिति को पहुँची हैं।

जो प्राणी पृथ्वी पर खूब आराम से थे, और अनेक प्रकार के सुखैश्वर्य जिन्होंने भोगे थे, उनकी गिनती सर्वोत्तम और सर्वोच्च आत्माओं में नहीं। सर्वोच्च वे हैं, जिनकी अग्नि-परीक्षा हो चुकी है, और जिन्होंने जीवन-मार्ग में अनेक आपदाओं को झेला है।

उच्च-नीच, अमीर-गरीब, स्त्री-पुरुष होने का कारण है। ये भेद व्यर्थ नहीं। और-और कारणों के सिवा इस कारण से भी परमात्म-ज्ञान का विकास प्राणियों के हृदय में हो सकता है।

पुनर्जन्म को लोग जैसा समझते हैं, वैसा नहीं। पुनर्जन्म का मतलब 'पीछे जाना' नहीं है। उसका मतलब हमेशा 'आगे जाना' है। प्रत्येक जन्म में प्राणी पहले जन्म की अपेक्षा, कम-से-कम, एक क़दम ज़रूर आगे बढ़ता है। कुछ-न-कुछ ज़रूर सीखता है।

मृत्यु से लोग घबराते क्यों हैं ? वह एक स्थिति-परिवर्तन-मात्र है—एक स्थिति से दूसरी स्थिति में जाना-मात्र है। जिसको लोग मृत्यु कहते हैं, उसके बाद अब भी मैं वही मनुष्य हूँ, जैसा पहले था। हाँ, मेरा पार्थिव अंश वहीं पृथ्वी पर रह गया है, लेकिन जिसके कारण उस अंश का संयोग मुझसे हुआ था, वह बना हुआ है। मृत्यु का आना तक मुझे नहीं मालूम हुआ। मैं मानो सो गया, और जब जागा, तब मैंने अपने को अपने अनेक मित्रों के पास पाया, जिनको मैंने समझा था कि फिर कभी न मिलेंगे।

मैं नहीं बतला सकता कि मैं किस लोक में हूँ। लोक-विषयक किसी प्रश्न का उत्तर मैं नहीं दे सकता। मैं सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ कि 'अहमस्मि' (मैं हूँ)।

यहाँ समय का कोई हिसाब नहीं। कब सूर्य उदय होता है, कब अस्त ; कब रात होती है, कब दिन ; इन बातों की खबर यहाँ किसी को नहीं। जहाँ तक मैंने देखा, सूर्य यहाँ नहीं। उसकी यहाँ जरूरत भी नहीं।

बहुधा देखा जाता है कि जो प्राणी जिस कुटुंब से संबंध रखता है, उसी में उसका पुनर्जन्म होता है। पर मैं यह नहीं कह सकता कि कितने दिन बाद पुनर्जन्म होता है। यहाँ पर कितनी ही अवस्थाएँ मुझसे बहुत अधिक उन्नत हैं। उन तक मैं नहीं पहुँच सकता। कितनी ही मुझसे भी गिरी हुई अवस्थाएँ हैं। उनका बयान सुनकर मैं काँप उठता

हूँ। आत्म-लोक पार्थिव-लोक के बीच में कहना चाहिए। मर्त्य और अमर्त्य एक दूसरे को रगड़ते हुए जाते हैं, यह सुनकर जरूर आश्चर्य होगा। पर बात ऐसी ही है।

पूर्वोक्त लाट साहब ने जो चिट्ठियाँ परलोक से भेजी हैं, उनकी कुछ बातों का यह सिर्फ संक्षेप है। मूल लेख में न-जाने क्या-क्या लिखा है। इंजीनियर, कारीगर, नए-नए आविष्कार करने वाले, जनरल, कर्नल, सिपाही इत्यादि सबकी बातें हैं। पार्लियामेंट, पार्लियामेंट के मेंबर, आयरलैंड की प्रजा-पालन-नीति आदि का भी जिक्र है। इन पत्रों को पढ़नेसे यह मालूम होता है कि मृत लाट साहब शायद 'थियासफिस्ट' थे, क्योंकि जन्म-मरण, लोक-परलोक, पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक आदि का वर्णन जो इन चिट्ठियों में है, वह बहुत अंश में 'थिऑसफी' के सिद्धांतों से मिलता है। शायद अब तक इन बातों का यथार्थ ज्ञान औरों को नहीं था। इनपेचीदा प्रश्नों का हल करने का पुण्य इसी समाज के महा-त्माओं के भाग्य में था।

एक और मासिक पुस्तक में एक आत्मा के कुछ प्रश्नोत्तर छपे हैं। उनको भी हम यहाँ पर देते हैं—

प्रश्न—तुम कौन हो?

उत्तर—मैं एक अज्ञात आत्मा हूँ। मेरी उम्र ३२ वर्ष की है। दक्षिणी आफ्रिका के कोलेंजो-नगर में मेरा शरीर छूटा था। मैं दफन नहीं किया गया। लड़ाई के बाद मेरा शरीर एक गढ़े में पड़ा रह गया। मैं आकाश में घूम रहा हूँ। मुझे कष्ट है, क्योंकि

मेरी अंत्येष्टि-क्रिया नहीं हुई। और अब मेरा शरीर ढूँढ़ने से नहीं मिल सकता।

प्र०—तुम कहाँ पैदा हुए थे ?

उ०—लिंकनशायर में।

प्र०—तुमने कैसे जाना कि तुम नरक जाओगे ? क्या किसी ने तुमसे ऐसा कहा है ?

उ०—क्योंकि एक बहुत ही भयावनी शक्ति मुझे वहाँ ले जाने को खींच रही है। मैं जानता हूँ, मेरी आत्मा वहाँ जरूर गुम हो जायगी। नरक में बर्फ नहीं ; पर वहाँ के कष्ट बर्फ से भी अधिक पीड़ा-जनक हैं।

प्र०—यदि तुम सचमुच आत्मा हो, तो तुमको दुःख क्यों मिलता है ?

उ०—मुझे सब बातें वैसी ही मालूम होती हैं, जैसी पृथ्वी पर मालूम होती थीं। मेरा शरीर एक प्रकार का खोखला है ; मेरा आत्मतत्त्व उसी में भरा हुआ है। स्याही यदि दावात से अलग कर दी जाती है, तो भी वह स्याही ही बनी रहती है। इसी तरह मृत्यु के बाद आत्मा की स्थिति भी पूर्ववत् बनी रहती है। मुझे खेद है, मैं तुमसे अब फिर बातचीत न कर सकूँगा।

प्र०—क्या तुम फिर न आ सकोगे ?

उ०—'पात्र' के द्वारा आने में बहुत कष्ट होता है ; आने के लिये जितनी शक्ति दरकार होती है, उतनी नहीं मिलती।

प्र०—'पात्र' किसे कहते हैं ?

उ०—'पात्र' उस पार्थिव मनुष्य को कहते हैं, जो अपनी शक्तियों और इंद्रियों को कुछ काल के लिये हम लोगों को दे देता है।

प्र०—किस तरह वह इन चीज़ों को दे सकता है?

उ०—उस अज्ञेय परमात्मा में विश्वास के बल पर।

इटली के रोम नगर में यह प्रश्नोत्तर हुआ था।

{ जून, १९०६

७—एक ही शरीर में अनेक आत्माएँ

एक ही शरीर में दो या दो से अधिक व्यक्तियों का जो बोध होता है, और उसके समय-समय पर जो अद्भुत उदाहरण पाए जाते हैं, वे आजकल के विद्वानों के लिये अजीब तमाशे मालूम पड़ते हैं। अमेरिका के हारवर्ड और एल-विश्वविद्यालय के दो अध्यापकों ने बीसवीं सदी की इस नई खोज में बहुत श्रम किया है। उन्होंने इस विषय पर एक पुस्तक लिखी है। उनका कथन है कि एक ही शरीर में भिन्न-भिन्न आत्माओं की स्थिति कोई खेल नहीं; किंतु वह मानसिक शक्ति ही का रूपांतर है। इस विषय में वे यों लिखते हैं—"एक शरीर में अनेक पुरुषों की सत्ता का बोध कोई नई बात नहीं; वह सबमें होनी चाहिए; क्योंकि अनेक क्षणिक बोधों के समुदाय का नाम मन है।"

ये लोग अपने प्रस्ताव की जाँच आजकल प्रत्यक्ष उदाहरणों

के द्वारा कर रहे हैं। बहुत-से लोग इसको एक मनमौजी और बेतुकी बात समझते हैं। मेरी भी यही राय है। जो उदाहरण इन लोगों ने दिए हैं, उन्हें सर्व-साधारण को हृदयंगम कराने के लिये यह लेख लिखा जा रहा है।

पादरी हाना का उदाहरण

जितने उदाहरण दिए गए हैं, उनमें सबसे अधिक उपयोगी हाना साहब का एक उदाहरण है; क्योंकि उसमें कही गई बातें मानस-शास्त्र-वेत्ताओं ने अपनी आँखों देखी हैं, और यह उदाहरण हाल ही में हुआ है। उसमें समय भी अधिक नहीं लगा। हाना साहब का पहला इतिहास लोग भली भाँति जानते थे, और वह अब तक जीवित भी हैं। फिर वह एक पढ़े-लिखे आदमी हैं।

१५ एप्रिल सन् १८६७ ईस्वी की शाम को गाड़ी पर घर लौटते समय टामस कारसन हाना-नामक पादरी गाड़ी से गिर पड़े। उनके सिर में बहुत चोट आई। वह पढ़े-लिखे, धर्मात्मा और कार्य-तत्पर पादरी हैं। उनके नाना डॉक्टर थे, और पिता इँगलैंड छोड़कर अमेरिका में बसनेवालों में से थे। गाड़ी से गिरने तक जो कुछ उनके विषय में मालूम है, उससे यही ज़ाहिर होता है कि वह किसी तरह के रोगी या सनकी न थे।

गिरने का परिणाम

गिरने के बाद हाना साहब बेहोशी की दशा में उठाए गए। साँस बहुत धीमी चलती थी, और जीवन प्रायः समाप्त हो

गया-सा जान पड़ता था। तीन डॉक्टरों ने समझा कि वह मर जायँगे। उनको होश में लाने की कोशिश की गई। वह एका-एक उठ बैठे, और पास के एक डॉक्टर को उन्होंने ढकेलने की चेष्टा की। डॉक्टरों ने समझा कि सरसाम हो गया है; इसलिये वह चारपाई पर बाँध दिए गए। जब वह चित लेटे, तब बंधन खोल दिए गए। उस समय हाना साहब अजीब तरह से ताकने लगे। न तो वह कुछ बोलते थे, और न लोगों की बोली ही समझते थे। अब यह हुआ कि हाना साहब तो गायब हो गए, और एक बच्चे की आत्मा उनके शरीर में प्रविष्ट हो गई। वह न केवल अपने आप ही को भूल गए, किंतु मामूली चीज़ों के नाम भी भूल गए। उन्हें न कुछ समझ पड़ता था, न बोल आता था, न बोझ आदि का ज्ञान होता था। वह हाथ-पाँव उठाना और खाना-पीना आदि सभी भूल गए। सारांश यह कि पुराने हाना साहब बिलकुल ही लुप्त हो गए, और एक सद्योजात बालक उनकी जगह पर आ गया।

बालक

और बातों में तो हाना साहब बालक ही के समान हो गए, पर उनकी बुद्धि वैसी दुर्बल न थी। स्वभाव में तो यह नया जीव लुप्त हुए हाना ही के समान था। उसकी स्मरण-शक्ति भी तेज़ थी, और उसमें नक़ल करने की ताक़त भी ख़ूब थी। पीछे से उसने अपनी मानसिक शक्ति के विषय में जो कुछ स्मरण करके कहा, वह ध्यान देने योग्य है।

पहले तो कमरे की सब चीजें हाना साहब को तसवीर के समान आँख के सामने लटकती-सी जान पड़ीं। मानो वे उनकी आँख ही का अंश हैं। उनको रंग का तो बोध हुआ, पर दूरी और मुटाई का बोध न हुआ। पहले उन्होंने आँखें खोलीं; फिर हाथ हिलाए; फिर सिर हिलाया। यह देखकर एक डॉक्टर वहाँ से खिसका, पर हाना ने समझा, डॉक्टर का खिसकना उनके हाथ चलाने का फल है। इतने में जब बिना हाथ हिलाए उन्होंने डॉक्टर को हटते देखा, तब उन्हें आश्चर्य हुआ। तब उन्हें बोध हुआ कि ऐसी भी चीजें हैं, जो मुझसे संबंध नहीं रखतीं, और बिना मेरे हिल-डुल सकती हैं। कुछ देर बाद हाना को मालूम होने लगा कि वे तीनो डॉक्टर मुझसे भिन्न हैं, पर हैं एक ही व्यक्ति। अतएव यदि मैं इनमें से एक को जीत लूँ, तो तीनो मेरे वश में हो जायँगे। पर वह, हाथ-पैर कैसे उठाना होता है, यही भूल गए थे। इस कारण विवश होकर वह पड़े रहे।

शिक्षा

हाना ने डॉक्टरों को बातें करते सुना, पर वह उनकी बातों को समझ न सके। वह उनके शब्दों की नक़ल करने लगे। यह देखकर सब लोग हँस पड़े। दूसरे दिन फिर उन्होंने तीस-चालीस शब्दों की नक़ल की। तीसरे दिन उनको नासपाती दिखाई गई, और उसका नाम बतलाया गया। तब उन्होंने नासपाती कहना सीखा। वह बार-बार नासपाती, नासपाती

कहते थे। इससे लोग उन्हें नासपाती ला देते थे। उसे वह खा लेते थे; पर नासपाती के साथ खाने की और कोई चीज़ न आती थी। यह उन्हें बुरा लगता। वह नासपाती का छिलका तक खाने लगे। यह देखकर उनको सिखाना पड़ा कि नासपाती में वह क्या खायँ, और क्या न खायँ।

कमरे की दीवार पर लटकती हुई एक तसवीर को छूने की चेष्टा करने पर हाना साहब को दूरी का ज्ञान हुआ। उन्होंने आईने में मुँह देखकर उसे छूने की चेष्टा की। आईना उन्हें चिकना जान पड़ा। इस पर उनको बहुत आश्चर्य हुआ। आईने को उन्होंने उलट दिया। पर जब उनको अपना मुँह न पकड़े मिला, तब उन्होंने समझा कि वह कोई ऐसा चित्र है, जो हट सकता है।

बालक हाना को यह समझते कुछ समय लगा कि और लोग मुझसे भिन्न हैं। पुरुष-स्त्री का भेद भी उन्हें नहीं ज्ञात था। एक बार एक बच्चे को देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि वह समझते थे कि लोग उन्हीं के समान बड़े होते हैं। वह अपने को अल्पवयस्क समझते थे। अपनी माता से उन्हें कुछ भी स्नेह न था।

हाना के शरीरस्थ इस बालक ने शब्द-उच्चारण करना शीघ्र सीख लिया। एक ही सप्ताह में वह थोड़ा-सा पढ़ने भी लगा, पर जो कुछ उसने पढ़ा, उसे दुबारा ही सीखना पड़ा। उसे ईश्वर और अपने पिता का ज्ञान न था। कुछ दिन बाद

उसने एक पत्र लिखा। उसमें कोई गलती न थी। जो शब्द एक बार वह सुनता था, उसे भूलता न था।

पुराने हाना

अब प्रश्न यह है कि पहले हाना कहाँ गए? क्या दूसरे हाना कोई नए पुरुष थे, जो पहले हाना के शरीर में रहने आए थे। उन दोनों में सिर्फ इतना ही संबंध था, जितना किसी खाली घर में टिकनेवाले बेगाने आदमी और घर के मालिक में होता है। एक तमाशा देखिए। पुराना हाना सपना देखने लगा, और जब उसने अपने सपने सुनाए, तब उसके पिता ने देखा कि वे सपने उसकी युवावस्था में देखी गई चीजों के संबंध में थे। उसने सपने में देखे हुए स्थानों के नाम बतलाए, पर यह बात वह न जान सका कि वे स्थान उसने पहले भी कभी देखे थे या नहीं। इस प्रकार अनेक पुराने स्वाप्निक संकेत पाने पर पहले हाना के पाने के लिये यत्न आरंभ किए गए। पहला हाना यहूदी भाषा जानता था; पर दूसरा नहीं जानता था—यहूदी भाषा में एक पद्य का पूर्वार्ध उसे सुनाया गया। इस पर वह एकाएक बोल उठा—'हाँ, मुझे यह स्मरण है।' फिर वह आद्योपांत पूरा पद्य सुना गया। पर तुरत ही सब पद्य वह फिर भूल गया। लोगों ने पूछा कि तुम्हें क्या मालूम पड़ा। उसने कहा, मैं बहुत डर गया था। ऐसा बोध होता था कि कोई दूसरा उसके ऊपर अधिकार जमा रहा है। उसने कहा, मैं नहीं जानता—मैं क्या बक गया।

कुछ समझ नहीं सका। कुछ काल के अनंतर एक पद्य, जिसे वह पहले अकसर गाया करता था, पढ़ा गया। इस पर उसने दो नाम लिए। पर ये किसके नाम हैं, यह बात वह न बतला सका। पता लगाने से मालूम हुआ कि ये नाम उन स्त्रियों के हैं, जिनके सामने उसने, तीन वर्ष पहले, यह गीत गाया था। इससे यह ज़ाहिर हो गया कि पहला हाना मर नहीं गया था, किंतु कहीं सो रहा था।

पहले हाना का पुनर्जीवन

कुछ दिन बाद हाना साहब न्यूयार्क भेजे गए। वहाँ उनके शरीर के भीतर सोए हुए व्यक्ति को अच्छी तरह जगाने का यत्न होने लगा। वह एक होटल में ठहराए गए। होटल खूब सजा था। मनोहर बाजे बज रहे थे। गाना भी हो रहा था। तीन घंटे के अनंतर वह सो गए। जब वह उठे, अपने भाई से उन्होंने पूछा कि मैं कहाँ हूँ। दूसरा हाना गायब हो गया; और पहला हाना फिर प्रकट हुआ। छ हफ्ते पहले गाड़ी से गिरने की बात को छोड़कर बीच की और सब बातों का उन्हें कुछ भी ज्ञान नहीं रहा। उन्होंने समझा, मुझे कल ही चोट लगी थी। और रात-भर मैं सोया था। शाम को उसने तंबाकू पी थी। उसकी गंध उसे मुँह में मालूम हुई। इस पर उसे आश्चर्य हुआ, क्योंकि पहले हाना ने बरसों से तंबाकू नहीं पी थी। कोई ४५ मिनट तक तो यह दशा रही। पीछे वह फिर सो गया। जागने पर पहला हाना

गायब हो गया, और दूसरा फिर शरीर में प्रविष्ट हो आया।

हानाओं में परस्पर लड़ाई

४५ मिनट तक हाना २६ वर्ष के स्मरणवाला पुरुष रहा, पर बाद में वह छ सप्ताह के बालकाला-मात्र शेष रह गया। डॉक्टरों ने तरह-तरह की दवाइयों का प्रयोग करना आरंभ किया। एक बार उन्होंने थोड़ी-सी भाँग पिला दी। रात-भर सोने के अनंतर पहला हाना फिर जागा। उसको ठहराने की अनेक चेष्टाएँ हुई। कुछ काल तक वह सोया। जब वह जागा, तब दूसरा हाना हो गया। उसे लोग नाट्यशाला में ले गए, और शराब पिलाई। फिर पहला हाना जागा। कुछ काल तक वह रहा। एक बार उसे गाड़ी पर चढ़ाकर लोग गिरजा-घर ले जाते थे कि वह गाड़ी ही पर कुछ सो-सा गया, और दूसरा हाना होकर उठा। यों ही कभी पहला, कभी दूसरा हाना प्रकट होता रहा। अंत में उसका जी घबरा उठा। उसे उसका जीवन बोझ मालूम होने लगा। कभी कुछ, कभी कुछ होते रहने से हाना व्याकुल हुए। वह यह भी स्थिर न कर सके कि वह पहले या दूसरे हाना होकर रहें, क्योंकि दो में से एक तो होना ही पड़ेगा। पर उन्हें इससे उतना क्लेश न होता था, जितना कि एक दशा में दूसरी-दूसरी दशा का स्मरण करने से होता था। वह चाहते थे कि दूसरी का स्मरण न हो, पर होता जरूर था।

अंतिम परिणाम

एक कारण कठिनाई का और था कि पहला हाना जिन लोगों को जानता था, दूसरा उन्हें पहचानता भी न था। दूसरे ने जिनसे प्रतिज्ञा की थी, पहला उनके नाम से भी वाक़िफ़ न था। वे दोनो मानो किसी व्यवसाय में साझी के समान थे। कुछ काल एक साझी काम चलाता था, कुछ काल दूसरा। दोनो का एक ही शरीर में रहना पहले तो असंभव-सा प्रतीत हुआ, पर कुछ समय बीतने पर दोनो एक ही में रह गए, और बीच के समय की त्रुटि भी न बोध होने लगी। अर्थात् उनका यह संस्कार जाता रहा कि हमें छ सप्ताह सोते बीते। वे समझने लगे कि हम दो आदमी एक ही घर में रहते हैं, और यह भी उन्हें स्मरण होने लगा कि हमारा अमुक समय अमुक दशा में बीता।

एंसेलबूर्न का उदाहरण

हाना की कथा से इसमें इतना ही भेद है कि इसमें दो व्यक्तियों ने एक शरीर में रहकर परस्पर एक दूसरे को नहीं जाना।

१७ जनवरी सन् १८८७ को रीड्स-नामक शहर के निवासी एंसेलबूर्न ने एक बैंक से कई हजार रुपए कुछ ज़मीन ख़रीदने के लिये निकाले, और उन्हें लेकर वह एक गाड़ी पर सवार हुए। उस समय से लेकर १४ मार्च तक उनका क्या हुआ, कुछ पता नहीं चला। वह ख़ुद ही नहीं जान सके। एक आदमी ने, जिसने अपना नाम ए० जे० ब्राउन बतलाया, एंसेलबूर्न के

शरीर को अमेरिका पहुँचाया, और उन रुपयों से मिश्री का गोदाम खोला। १४ मार्च को ए० जे० ब्राउन गायब हो गया, और ए० सेलबूर्न सोकर उठा। वहाँ वह कैसे आया, यह उसे विदित न था। उसे बैंक से रुपए लेकर चलने तक की सिर्फ याद थी। उसका वजन प्रायः १० सेर कम हो गया था। लोगों ने पहले तो उसे पागल समझा, पर पीछे से घर पहुँचाया। तीन साल बाद उस पर हिपनाटिज्म अर्थात् प्राण-परिवर्तन की प्रक्रिया की गई। तब ए० जे० ब्राउन लौट आया। उसने कहा कि मेरा गोदाम क्या हुआ? मैं एंसेलबूर्न और उनकी बीबी को नहीं जानता। यह क्या बात है, किसी की समझ में न आई। अंत तक एंसेलबूर्न और ए० जे० ब्राउन ने परस्पर एक दूसरे को नहीं पहचाना। हिपनाटिज्म की सहायता से ही ए० जे० ब्राउन प्रकट और लुप्त होते रहे।

एक कसेरे का उदाहरण

सन् १६०४ में डॉक्टर आसबन ने एक अखबार में लिखा कि कुछ दिन हुए, एक धनवान् कसेरा एक दिन शाम को हवा खाने के लिये निकला, और एकाएक गायब हो गया। दो वर्ष बाद एक और देश में एक कसेरा अपने औजार फेंककर चौंक पड़ा। उसने कहा, मैं यहाँ कैसे आया? मेरा यह नाम कैसे पड़ा? मैं तो अमुक आदमी हूँ, जो दो वर्ष पहले खो गया था। दो वर्ष तक कौन प्रेत उस पर सवार था, कुछ नहीं मालूम हुआ। इन दो वर्षों की बातें उसे बिलकुल याद नहीं।

डॉक्टर डाना के आदमी का उदाहरण

सन् १८९४ की 'साइकालॉजिकल रिव्यू'-नामक पुस्तक में डॉक्टर डाना ने एक रोगी का हाल लिखा है कि वह एक बार धुएँ के कारण बेहोश हो गया। जब होश में आया, तब डाना के समान वह एक बालक की-सी बुद्धि का आदमी हो गया। उसे तीन महीने तक लिखना-पढ़ना सीखना पड़ा। तीन महीने बाद उसकी स्त्री उसके आरोग्य होने से निराश होकर चिल्लाकर रो उठी। बस, उसी रात को उसके सिर में दर्द हुआ, और वह सो गया। सबेरे वह पूर्ववत् हो गया। उसे उस बालक का स्मरण बिलकुल जाता रहा। उस बालक ने तीन महीने में डाना की अपेक्षा पढ़ना-लिखना कुछ कम सीखा।

सैली-नामक कुमारी का उदाहरण

बोस्टन के डॉक्टर मार्टन प्रिंस लिखते हैं कि एक सुशिक्षिता और कम बोलनेवाली कुमारी स्त्री पर उन्होंने प्राण-परिवर्तन की क्रिया का प्रयोग किया। परिवर्तित दशा में उसने अपनी आँखें मलीं, और चाहा कि वे खुल जायँ। आँखें खुल गईं, और वे एक दूसरे ही व्यक्ति के अधीन बोध हुईं। वह व्यक्ति अपना नाम सैली बताने लगी। यह नई व्यक्ति बड़ी नटखट और खिलखिली थी। पुस्तकों से यह घृणा प्रकट करती थी। पर प्रयुक्त स्त्री धर्मात्मा और सच्चरित्र थी। पहले सैली कुछ ही मिनट ठहरती थी, पर पीछे से वह कई दिनों तक ठहरने लगी। सैली प्रयुक्त स्त्री के हृदय के भाव सब जानती थी।

उसको चिट्ठियों के आशय लिखकर वह रख जाती, और उसके रक्खे हुए टिकट चुरा लेती थी। कभी-कभी उसकी जेब में वह मकड़ी का जाला या साँप की केंचुली रख देती थी। सैली न केवल उसके भावों को ही जान लेती थी, किंतु उसके भावों पर अधिकार भी रखती थी, और उसके साथ बुरी-बुरी दिल्लगी करके उसे क्लेश पहुँचाया करती थी।

ट्वई और सिपाही के उदाहरण

अमेरिका में एक विद्या-व्यसनी कुमारिका थी। उसने पढ़ने में बहुत श्रम किया। इससे १८ वर्ष की उम्र में उसकी तबियत बिगड़ गई। वह रोगी हो गई। कुछ दिन बाद उसके ऊपर ट्वई-नामक एक स्त्री प्रकट होने लगी। वह रोगी थी। पर ट्वई प्रसन्न-चित्त और बलिष्ठ मालूम होती थी। ट्वई मनमाना आती-जाती थी। जाते समय वह पत्र लिखकर रख जाती थी, जिससे उस रोगी कुमारिका का चित्त ट्वई के चले जाने पर भी प्रसन्न रहता था। कुछ दिन बाद ट्वई ने कहा, मैं चली जाऊँगी, और बाय-नामक एक व्यक्ति मेरे स्थान पर आवेगा। बाय आया। वह उन दोनों से परिचित हो गई। पर ट्वई और बाय तभी तक ठहरे, जब तक वह यथेष्ट आरोग्य नहीं हुई।

ऐसे ही एक सिपाही की कथा है, जो भिन्न-भिन्न व्यक्ति होकर दो-तीन दफ़े फ़ौज में भरती हुआ, और होश में आ जाने पर भाग जाने का अपराधी ठहराया गया। पर अब और

ऐसी कथाएँ देने की जरूरत नहीं। इस विषय के उदाहरण बहुत हुए। जिस पुस्तक के आधार पर यह लेख लिखा जाता है, उसके कर्ता की अब राय सुनिए।

ग्रंथकर्ता की राय

ग्रंथकर्ता की राय में मनुष्य का मन एक चीज नहीं। आत्मा से वह पृथक् है। वह 'अहं' का बोधक नहीं। अनेक क्षणिक बोधों के यथोचित योग को हम व्यक्ति या जन या आप कहते हैं। हमारी उपमा बाजार से दी जा सकती है। सबेरे के बाजार की दशा शाम को और ही कुछ हो जाती है। बाजार तो वही रहता है, पर वहाँ आदमी और आ जाते हैं। इसी प्रकार हमारे बोधों का परिवर्तन होता रहता है। उन पर एक व्यक्तित्व उसी तरह रहता है, जैसे मनुष्य-जाति पर उसका एक जातित्व। इंद्रियों से अनुस्यूत तंतुओं और भावों के संपर्क से मानसिक क्रियाओं की उत्पत्ति होती है।

ग्रंथकार का आशय एक उदाहरण से और स्पष्ट हो जायगा। मन या व्यक्ति को एक स्वतंत्र राज्य समझो। जैसे स्वतंत्र राज्य में बहुत आदमी रहते हैं, पर उनका समुदाय मिलकर वह एक ही है, उसी प्रकार क्षणिक बोध अनेक हैं, पर उन सबका समुदाय मन एक ही है। राज्य के भिन्न-भिन्न विभाग और अधिकारी अनेक हैं। मानसिक बोधों के विभाग और दशाएँ भी अनेक हैं। जब तक राज्य के आधारभूत अधिकारी अचास्थित हैं, तब तक एक राज्य है। पर जब अधिकारियों में परिवर्तन

होता है, तब वे उस राज्य को पूर्ववत् नहीं रहने देते। वे नए-नए नियम बनाते हैं, और वही राज्य और प्रकार का हो जाता है। इसी तरह मानसिक बोधों के समुदाय में परिवर्तन होने पर मनुष्य भिन्न व्यक्ति-सा प्रतीत होता है। जैसे राज्य में अधिकारियों का परिवर्तन प्रकृत अवस्था में न होकर विद्रोह या शत्रु के आक्रमण आदि होने पर होता है, वैसे ही मानसिक व्यक्ति का परिवर्तन भी प्रकृत अवस्था में न होकर रोग, चोट, प्राण-परिवर्तन की क्रिया अथवा नशीली चीज़ों के प्रयोग आदि से होता है।

सच क्या है ?

लेखकों के कथन में कुछ सत्य ज़रूर है, पर वे उसे बहुत अधिक खींच ले गए हैं। यदि उनका कहना सत्य मान लिया जाय, तो अपढ़ गँवारों का विदेशी भाषा बोलना, जैसा कि कभी-कभी देखने में आया है, कैसे ठीक होगा ? मन ने जिन बोधों को कभी नहीं पाया, वे (विदेशी भाषा बोलना आदि) कैसे व्यक्त हो सकते हैं। हिपनाटिज़्म अर्थात् प्राण-परिवर्तन की क्रिया से ऐसी अनेक प्रकार की विलक्षण बातें देखने में आई हैं। लंदन में एक बार हिपनाटिज़्म की क्रिया से प्रयुक्त एक मनुष्य ने एक लेख लिखा। उसे कोई न पढ़ सका। अजायब-घर में भी किसी से एक अक्षर भी न पढ़ा गया। कुछ दिन बाद एक जापानी ने उसे बहुत पुरानी जापानी-भाषा का लेख बतलाया, और पढ़कर उसका अनुवाद कर दिया। अब यदि

मन बोधों का समुदाय है, तो यह पुरानी जापानी लंदन के आदमी ने कब, कहाँ और कैसे पढ़ी? बहुत-सी दशाओं में देखी हुई चीज़ ही देख पड़ती है, यह निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता; पर सर्वदा ऐसा ही होता है। अदल-बदलकर प्रकट होनेवाले व्यक्तियों में भी ग्रंथकार का सिद्धांत संघटित नहीं होता। ऊपर जो उदाहरण दिए गए हैं, उनमें मन को अनेक बोधों का समुदाय न मानकर ऐसा मानना चाहिए कि मनुष्य एक जीवधारी है, उसमें मन भी एक इंद्रिय है। वही सब बोधों को ग्रहण करता है। यदि ऐसा न माना जाय, तो सैकड़ों फ़ोटो उतारनेवाले फ़ोटोग्राफ़र को भी फ़ोटोग्राफ़ों का समुदाय कहना चाहिए। पर फ़ोटोग्राफ़र फ़ोटोग्राफ़ों का समुदाय नहीं है, किंतु उनको एकत्र करनेवाला है। इसी तरह मन बोधों का समुदाय नहीं, किंतु ग्रहण करनेवाला है। दो व्यक्तियों के होने का कोई पक्का प्रमाण नहीं। हाना के उदाहरण से इतना ही सिद्ध होता है कि चोट लगने से मन अपनी पूर्व-संगृहीत भावनाओं को स्मरण नहीं कर सकता, क्योंकि भावना-ग्राहक तंतुओं में विकार पैदा हो जाता है। यही बात बाक़ी के उदाहरणों का भी कारण है। संस्कार मन को होता है, और संस्कारों के चिह्न भी मन ही पर उठते हैं। प्रयोजन पड़ने पर उनका स्मरण आता रहता है। ध्यान देकर देखी हुई वस्तु बहुत समय बीतने पर भी याद आ जाती है। चोट आदि लगने से मन में विकार पैदा हो जाता

है। इससे मन [illegible] के समान, बिलकुल बालक का-सा, हो जाता है। और, प्रायः सब सांसारिक बातें, हाथ-पैर हिलाना आदि, उसे फिर से सीखना पड़ता है। मन पर संस्कारों के चित्र-से बने रहते हैं। चित्त के संयोग से चित्र प्रत्यक्ष हो जाते हैं।

बिना पुराने संस्कार के कोई बात स्मरण नहीं हो सकती। ऊपर जो जापानी लेख का उदाहरण दिया गया है, उस विषय में, यदि पूरा पता लगाया जाय, तो मालूम होगा कि हिपनाटिज़्म करनेवाला या प्रयुक्त जन अवश्य किसी समय पुरानी जापानी भाषा जाननेवाले से मिला होगा।

{ मई, १९०६

८—मनुष्येतर जीवों का अंतर्ज्ञान

मनुष्येतर अर्थात् मनुष्यों के सिवा और दूसरे पशु-पक्षी आदिक जो जीवधारी हैं, उनको भी परमात्मा ने ज्ञान दिया है। वे सज्ञान तो हैं, परंतु उनको इतना ज्ञान नहीं है, जितना मनुष्य को होता है। उनको भूख-प्यास निवारण करने का ज्ञान है; उनको अपने शत्रु-मित्र के पहचानने का ज्ञान है; उनको चोट लगने अथवा मारे जाने से उत्पन्न हुई पीड़ा का ज्ञान है। ऐसे ही और भी कई प्रकार के ज्ञान पशु-पक्षियों को हैं। परंतु उनके

ज्ञान की सीमा नियत है। ज्ञान के साथ-साथ ईश्वर ने उन्हें एक प्रकार की सांकेतिक भाषा भी दी है। हम देखते हैं, जब बिल्ली अपने बच्चे को बुलाती है, तब वह एक प्रकार की बोली बोलती है; जब उसको कोई प्यार करने अथवा उस पर हाथ फेरने लगता है, तब वह दूसरे प्रकार की बोली बोलती है; और जब वह क्रोध में आती है अथवा किसी दूसरी बिल्ली को देखती है, तब वह एक भिन्न ही प्रकार का शब्द करती है। पक्षियों में भी प्रायः यह बात पाई जाती है। वे भी भिन्न-भिन्न समय में भिन्न-भिन्न प्रकार का शब्द करते हैं।

योरप और अमेरिका के गवेषक विद्वानों ने पशु-पक्षियों के संबंध में बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त किया है। किसी ने मछलियों के विषय में, किसी ने पक्षियों के विषय में और किसी ने जंगली जीवों के विषय में ज्ञान-संपादन करने में अपना सारा आयुष्य व्यतीत कर डाला है; यहाँ तक कि अत्यंत छोटे प्राणी चिउँटी पर भी किसी-किसी ने बड़े-बड़े ग्रंथ लिखकर अनेक अद्भुत-अद्भुत बातें प्रकट की हैं। चिउँटियाँ घर बनाती हैं, और वर्षा आने के पहले ही, तीन-चार महीने के लिये, चारा संचित कर रखती हैं। यह हम लोग प्रत्यक्ष देखते हैं। परंतु शोधक विद्वानों ने देखा है कि चिउँटियों में भी धनी और निर्धन होते हैं; दास और दासियाँ होती हैं; गाय और भैंसें होती हैं; और विरुद्ध दलों में कभी-कभी घोर संग्राम तक होते हैं। ये दास-दासियाँ और गाय-भैंसें

सब चिउँटियाँ ही होती हैं। यही नहीं, वे बोलती भी हैं, और अपनी बोली में सुख-दुःख, हर्ष-विमर्ष भी प्रकट करती हैं। अतएव मनुष्येतर जीवों की सज्ञानता के संबंध में संदेह न करना चाहिए। जो लोग समाचार-पत्र पढ़ते हैं, उन्होंने पढ़ा होगा कि एक अमेरिका-वासी विद्वान् इस समय बंदरों की बोली समझने का प्रयत्न कर रहे हैं। कई वर्ष तक वह आफ़्रिका के अगम्य जंगलों में गरीला, शिंपजी इत्यादि बंदरों के बीच रहे हैं; उनकी बोली, उनकी चेष्टा और उनके आचरण को ध्यान से देखा है; उनकी बोली को शब्द-ग्राहक यंत्र (ग्रामोफ़ोन) में भरकर उसकी परीक्षा भी उन्होंने की है।* यदि ऐसे ही प्रयत्न होते रहे, तो कोई दिन शायद ऐसा आवेगा, जब ये अथवा और कोई विद्वान् पशु-पक्षियों के साथ बात-चीत करने में भी समर्थ होंगे। इस देश के पुराणादिक में पशु-पक्षियों की शब्द-ज्ञान-संबंधिनी बातों का कहीं-कहीं उल्लेख पाया जाता है। पंच-पक्षी इत्यादि पुस्तकें भी, कुछ-कुछ, इसी विषय से संबंध रखनेवाली विद्यमान हैं। संभव है, भारतवर्ष के प्राचीन विद्वानों ने मनुष्येतर प्राणियों की भाषा का मर्म जाना हो।

* इन्होंने अपनी जाँच का फल एक ग्रंथ में अब प्रकट किया है, जिसमें सिद्ध किया है कि बंदरों की भी निज की बोली है।

सितंबर, १९१०

जैसे मनुष्यों में ज्ञान-संपादन करने की पाँच इंद्रियाँ हैं, वैसे ही मनुष्येतर जीवों में भी हैं। परंतु दूसरे जीवों की कोई-कोई ज्ञानेंद्रियाँ मनुष्यों की इंद्रियों से प्रबल होती हैं। उदाहरण के लिये गृद्ध की दृष्टि का विचार कीजिए। वह मनुष्यों की अपेक्षा बहुत दूर की वस्तु देख सकता है। बिल्ली की घ्राण-शक्ति भी प्रबल होती है। चाहे जितनी छिपी हुई जगह में ढका हुआ दूध रक्खा हो, वह वहाँ शीघ्र ही पहुँच जाती है। घ्राण की विशेष शक्ति प्रायः सभी पशुओं में देखी जाती है। परंतु इन पाँच इंद्रियों के अतिरिक्त, जान पड़ता है, पशुओं में और भी कोई इंद्रिय है। यदि नहीं, तो क्यों सिकरे के आने के पहले ही चिड़ियाँ सशंक होकर इधर-उधर भागने लगती हैं। जंगल में शेर के कोसों दूर होने पर भी उस ओर पशु नहीं जाते। विद्वानों ने परीक्षा करके देखा है कि ऐसे अवसर पर जीवों की घ्राण-शक्ति काम नहीं देती। एक-एक, दो-दो मील पर स्थित वस्तु का ज्ञान घ्राण द्वारा होना असंभव है। परंतु पशुओं को हिंस्र जीवों के होने का ज्ञान बहुत दूर से हो जाता है। ललित-पुर से होती हुई जो सड़क झाँसी को गई है, उस पर कई बार इक्केवालों के घोड़े शेर के शिकार हो गए हैं। जो इक्केवाले जीते बचे, उन्होंने बतलाया है कि जहाँ पर शेर था, उसके एक मील इधर ही से घोड़े ने आगे बढ़ना अस्वीकार किया। परंतु हंटरों की मार से, बड़ी कठिनाई से, उसे किसी प्रकार आगे बढ़ाया, और दो-ही-चार मिनट में शेर ने आकर घोड़े

पर आक्रमण किया। इससे क्या सिद्ध होता है ? इससे यही सिद्ध होता है कि मनुष्येतर जीवों को ईश्वर ने एक प्रकार का अंतर्ज्ञान दिया है अथवा उनको कोई ऐसी इंद्रिय दी है, जिससे भावी विपत्ति की उन्हें पहले ही से सूचना हो जाती है, और वे अपने प्राण बचाने का उपाय करने लगते हैं। परमात्मन् ! तेरी दयालुता की सीमा नहीं ! हमारे देश के ज्योतिष-ग्रंथों में जहाँ उत्पातों का वर्णन है, वहाँ कहीं-कहीं लिखा है कि यदि कुत्ते ऐसा शब्द करने लग जायँ, अथवा उलूक यों चिल्लाने लगें, तो अमुक-अमुक उत्पात होने की सूचना समझनी चाहिए। आश्चर्य नहीं कि प्राचीन ऋषियों ने सूक्ष्म परीक्षा द्वारा पशु-पक्षियों की शरीरेंद्रियों का विशेष ज्ञान प्राप्त करके अनुभव-पूर्वक ऐसा लिखा हो।

मनुष्येतर जीवों में कोई बात ऐसी अवश्य है—उनमें कोई ऐसी इंद्रिय अवश्य है—जिससे भावी भय का ज्ञान उन्हें हो जाता है। इस विषय में अब योरप और अमेरिका के विद्वानों को कोई शंका नहीं रही। इस संशय-हीनता का एक कारण हुआ। वह एक ऐसा कारण है, जिससे यह सिद्धांत निकलता है कि अनंत प्राणिनाशक अनर्थों से भी ईश्वर अल्पज्ञ मनुष्यों को कोई-न-कोई शिक्षा देता है। इस कारण का उल्लेख हम नीचे करते हैं।

अमेरिका के पास, अटलांटिक महासागर में, द्वीपों का एक समूह है। उसमें छोटे-बड़े सैकड़ों द्वीप हैं। उनमें से क्यूबा,

जमाइका, ट्रीनीडाड, हांडूरास, हयाटी, बहामा इत्यादि मुख्य हैं। इन द्वीपों में से कुछ अँगरेज़ों के, कुछ स्पेनवालों के, कुछ फ़रासीसियों के और कुछ हालैंडवालों के अधीन हैं। कुछ स्वतंत्र हैं, और कुछ उजाड़ भी पड़े हैं। इन द्वीपों का नाम 'वेस्ट इंडीज़' है। इंडीज़ का अर्थ हिंदोस्तान है। कोलंबस जब इस द्वीप-समूह में पहलेपहल पहुँचा, तब उसने समझा कि ये द्वीप हिंदोस्तान के मार्ग में हैं, और वह शीघ्र ही वहाँ से हिंदोस्तान पहुँच जायगा। इसीलिये उसने इन द्वीपों का नाम 'वेस्ट इंडीज़' अर्थात् पश्चिमी हिंदोस्तान रक्खा। परंतु पीछे अपनी भूल उसकी समझ में आई। इन द्वीपों में मारटिनीक-नामक एक छोटा-सा द्वीप फ़रासीसियों का है। उसका क्षेत्रफल ३८१ वर्ग-मील है। उसमें १,६६,२३० मनुष्य रहते हैं। वह ४५ मील लंबा और १५ मील चौड़ा है। उसकी पहली राजधानी फ़ोर्ट-डी-फ़्रांस-नामक नगर था, परंतु कुछ दिनों से सेंटपीरी-नामक नगर राजधानी बनाया गया है। सेंटपीरी के उत्तर और दक्षिण, दोनों ओर, ज्वालामुखी पर्वत हैं। इन पर्वतों में मौंटपीरी सबसे बड़ा है। उसकी ऊँचाई ४,४३० फ़ीट है। ये ज्वाला-वर्षी पर्वत बड़े ही विकराल हैं। परंतु बहुत समय से ये निद्रित थे। किसी को यह शंका न थी कि फिर कभी ये पर्वत ज्वाला उगलने लगेंगे। मनुष्यों का यह अनुमान झूठ निकला। गत वर्ष, मई के महीने में, एक दिन, प्रातःकाल, मौंटपीरी ने अपना विकराल मुख सहसा खोल दिया। बड़े वेग से उसका स्फोट हुआ, और राख,

पत्थर, तप्त धातु इत्यादि की अखंड वृष्टि होने लगी। एक ऐसा विषाक्त धुआँ उसके भीतर से निकलना आरंभ हुआ कि उसके फैलते ही, कोई पंद्रह-बीस मिनट में ही, सेंटपीरी मनुष्य-हीन हो गया। लगभग ३०,००० मनुष्य थोड़ी ही देर में भूमिशायी हो गए। जो जहाँ था, वह वहाँ ही रह गया। फ्रांस का गवर्नर और उसकी स्त्री भी मृत्यु के मुख में पड़ी। अमेरिका और इँगलैंड के सरकारी मुलाज़िम भी न बचे। बचा एक हबशी अपराधी! उसने मनुष्य-हत्या की थी। इसलिये उसे प्राण-दंड की आज्ञा हुई थी। दो-ही-चार दिनों में उसे फाँसी होनेवाली थी। वह भू-गर्भ में एक कोठरी के भीतर बंद था। अतएव वही अकेला जीता बचा। इस उत्पात की कुछ भी सूचना लोगों को पहले से न थी। सब लोग निश्चिंत थे कि सहसा उन पर ईश्वरीय कोप हुआ, और थोड़ी ही देर में सब-के-सब इस लोक से प्रस्थान कर गए। यह ऐसा भयंकर स्फोट था कि तप्त धातुओं की नदियाँ बहती हुई समुद्र तक पहुँच गईं। कई जहाज़, जो बंदरगाह पर थे, जल गए, और समुद्र दूर तक अंगार के समान लाल दिखाई पड़ने लगा।

इस उत्पात की सूचना यद्यपि मनुष्यों को न थी, परंतु पशु-पक्षियों को अवश्य थी। ज्वालामुखी के स्फोट होने के महीनों पहले सेंटपीरी के समीपवर्ती जीव-जंतु और पशु-पक्षी घबराए-से देख पड़ते थे। उनके मुख पर विकलता और भय के चिह्न स्पष्ट जान पड़ते थे। वे एक विचित्र प्रकार की करुणोत्पादक

बोली बोलते थे। जब ज्वालामुखी के जाग्रत् होने का समय निकट आ गया, तब ये जीव क्रम-क्रम से मॉंटपीरी को छोड़कर भागने लगे, और थोड़े ही दिनों में उस नगर के आस-पास का प्रदेश जंगली जीवों से प्रायः शून्य हो गया। मौंटपीरी पर हजारों सर्प और अजगर थे। वे भी न-जाने कहाँ चले गए। उस पर्वत के ऊपर, पेड़ों पर बैठकर, पक्षी नानाप्रकार के मनोरम कर्ण-मधुर गान किया करते थे। वे सब उस पर्वत को छोड़कर कहीं-के-कहीं उड़ गए। इससे यह निर्भ्रांत सिद्ध होता है कि मारटिनीक द्वीप के मनुष्येतर प्राणियों को इस भावी अनर्थ के लक्षण दिखाई देने लगे थे। यदि ऐसा न होता, तो वे कदापि स्थानांतर न कर जाते। जहाँ पर जो जन्म से रहता है, वह विना किसी प्रबल कारण के उस स्थान को नहीं छोड़ता। मौंटपीरी के ज्वाला उगलने के लक्षण इन जीवों को चाहे किसी स्वाभाविक रीति पर विदित हो गए हों, चाहे उनकी किसी ज्ञानेंद्रिय के योग से विदित हो गए हों, चाहे साधारण इंद्रियों के अतिरिक्त उनके और कोई इंद्रिय हो, जिसके द्वारा विदित हो गए हों, परंतु विदित अवश्य हो गए थे। भावी बातों को जान लेना अंतर्ज्ञान के विना संभव नहीं। अतएव यह सिद्धांत निकलता है कि ईश्वर ने पशुओं को, अपनी रक्षा करने-भर के लिये, यह अंतर्ज्ञान अवश्य दिया है। यदि इस प्रकार का अंतर्ज्ञान किसी स्वाभाविक रीति पर, अथवा किसी इंद्रिय द्वारा हो सकता हो, और उसे मनुष्य

साध्य कर सकें, तो लोक का कितना कल्याण हो। नदियों के सहसा बढ़ने, भूकंप होने और ज्वाला-गर्भ पर्वतों से आग, पत्थर इत्यादि के निकलने से जो अनंत मनुष्यों की बलि होती है, वह न हो। भावी उत्पात के लक्षण देख पड़ते ही मनुष्य, अन्यत्र जाकर, अपनी रक्षा सहज ही कर सके।

कर्बी और स्पेंस इत्यादि पंडितों ने पशु-पक्षियों के जीवन-शास्त्र-संबंधी अनेक ग्रंथ लिखे हैं, और उनमें इन प्राणियों के ज्ञान, इनकी बुद्धि, इनकी भाषा, इनके स्वभाव और इनके आचरण इत्यादि का उन्होंने बहुत ही मनोरंजक वर्णन किया है। सर जान लबक-नामक एक शास्त्रज्ञ विद्वान्, इस समय भी, पशु-पक्षी, कीट-पतंग इत्यादि जीवों का ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं। परंतु जब से पूर्वोक्त घटना मारटिनीक में हुई है, तब से योरप और अमेरिका के विद्वानों का ध्यान इस शास्त्र की ओर और भी अधिक खिंचा है। वे इस समय बड़ी-बड़ी परीक्षाओं द्वारा यह जानने का यत्न कर रहे हैं कि मनुष्येतर प्राणियों को किस प्रकार भावी आपत्तियों की सूचना हो जाती है। लोगों को आशा है कि किसी समय वे इस कार्य में अवश्य सफल-काम होंगे, और निश्चित सिद्धांतों द्वारा मनुष्यों को नैसर्गिक अनर्थों से बचाने की कोई युक्ति निकालने में भी वे समर्थ होंगे। तथास्तु।

{ जुलाई, १९०२

६—क्या जानवर भी सोचते हैं ?

जानवरों से हमारा मतलब पशुओं से है। क्या पशु भी विचार करते हैं, सोचते हैं, समझ रखते हैं या चिंतना करते हैं ? हार्पर्स मैगेज़ीन-नामक एक अँगरेज़ी सामयिक पुस्तक में, एक साहब ने, इस विषय पर, एक लेख लिखा है। उसमें लेखक ने यह सिद्ध किया है कि जानवरोंमें समझ नहीं होती; वे किसी तरह का सोच-विचार नहीं कर सकते, क्योंकि वे बोल नहीं सकते। जिस प्राणी में बोलने की शक्ति नहीं, उसमें विचार करने की भी शक्ति नहीं हो सकती। इस विज्ञानी के सिद्धांतों का सारांश हम नीचे देते हैं—

आत्मतत्त्व-विद्या के जाननेवालों का यह मत है कि जानवरों में किसी प्रकार की मानसिक शक्ति नहीं है। विशेष प्रकार की स्थिति आने से वे विशेष प्रकार के काम करते हैं। अर्थात् जैसी स्थिति होती है—जैसा मौक़ा होता है—उसी के अनुसार जानवर काम करते हैं। यह नहीं कि जैसे आदमी सब काम समझ-बूझकर करते हैं, वैसे वे भी करते हों। जब कोई विशेष स्थिति प्राप्त होती है, तब उसके अनुसार पशुओं की ज्ञानेंद्रियों पर कुछ चिह्न-से प्रकट हो जाते हैं। उन चिह्नों के पैदा होते ही उनकी इच्छा काम करने को चाहती है, और जैसे चिह्न होते हैं, वैसे ही काम वे करने लगते हैं। पशुओं को मानसिक भावना या चिंतना नहीं करनी पड़ती; वे इस तरह की

भावनाएँ कर ही नहीं सकते। जब कोई आदमी किसी पर आघात करना चाहता है, किसी को मारना चाहता है, तब वह उससे फ़ौरन् ही अपना बचाव करता है अर्थात् ज्यों ही वह आघात होने के लक्षण देखता है, त्यों ही, उसी क्षण, वह पीछे हट जाता है, या और किसी तरह से अपना बचाव करता है। उस समय उसे किसी तरह का सोच-विचार नहीं करना पड़ता। जानवर इसी तरह बिना किसी चिंतना, भावना या विचार के काम करते हैं। उनके सारे काम प्रवृत्ति या अभ्यास की प्रेरणा से होते हैं। हम लोग अपने उदाहरण से जानवरों की शक्तियों का अंदाज़ा करते हैं। पर यह बात ठीक नहीं। जानवरों में मानसिक व्यापार के कोई चिह्न नहीं देख पड़ते। किसी आंतरिक प्रवृत्ति, उत्तेजना या शक्ति की प्रेरणा से ही वे सब शारीरिक व्यापार करते हैं। किसी मतलब से कोई काम करना बिना ज्ञान के—बिना बुद्धि के—नहीं हो सकता। ज्ञान दो तरह का है—स्वाभाविक और उपार्जित। स्वाभाविक पशुओं में और उपार्जित मनुष्यों में होता है। हम सब काम सोच-समझकर जैसा करते हैं, जानवर वैसा नहीं करते। उनमें विचार-शक्ति ही नहीं है; उनके मन में विचारों के रहने की जगह ही नहीं; क्योंकि वे बोल नहीं सकते। ठीक-ठीक विचारणा या भावना बिना भाषा के नहीं हो सकती। भाषा ही विचार की जननी है। भाषा ही से विचार पैदा होते हैं। वाणी और अर्थ का योग सिद्ध ही है। शब्दों से अर्थ या विचार

उसी तरह अलग नहीं हो सकते, जैसे पदार्थों के आकार उनसे अलग नहीं हो सकते। जहाँ आकार देख पड़ता है, वहाँ पदार्थ ज़रूर होता है। जहाँ विचार होता है, वहाँ भाषा ज़रूर होती है। बिना भाषा के विषय-ज्ञान और विषय-प्रवृत्ति इत्यादि-इत्यादि बातें हो सकती हैं, परंतु विचार नहीं हो सकता। पशु अपनी इंद्रियों की सहायता से ही पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। जो पदार्थ समय और आकाश में विद्यमान रहते हैं, सिर्फ़ उन्हीं का ज्ञान पशुओं को इंद्रियों से होता है, और पदार्थों का नहीं। पशुओं में स्मरण-शक्ति नहीं होती। पुरानी बातें उन्हें याद नहीं रहतीं। यही पूर्वोक्त साहब का मत है।

इनमें से बहुत-सी बातों का खंडन हो सकता है। कुछ का खंडन लोगों ने किया भी है। विचार क्या चीज़ है? सोचना किसे कहते हैं? सिर में एक प्रकार के ज्ञान-तंतु हैं। बाहरी जगत् की किसी चीज़ या शक्ति का प्रतिबिंब-रूपी ठप्पा जो उन तंतुओं पर उठ आता है, उसी का नाम विचार है। जितने प्रकार के शब्द सुन पड़ते हैं, उनकी तसवीर सिर के भीतर तंतुओं पर खिंच-सी जाती है। यह तसवीर मिटाए नहीं मिटती। कारण उपस्थित होते ही वह नई होकर ज्ञान-ग्राहिका शक्ति के सामने आ जाती है। यह कहना ग़लत है कि बिना भाषा के विचार नहीं हो सकता। जो लोग ऐसा कहते हैं, वे शायद उन शब्द-समूहों को भाषा कहते हैं, जो वर्ण-रूपी चिह्नों से बने हैं। पर क्या कोई इंजीनियर या मिस्त्री एक बड़े-से-बड़े मकान या

मीनार की कल्पना, बिना ईंट, पत्थर और चूने इत्यादि का नाम लिए भी, नहीं कर सकता ? क्या ज्यामिति-शास्त्र के पंडित को अपना मतलब सिद्ध करने के लिये वर्ण-रूपिणी भाषा की कुछ भी जरूरत पड़ती है ? अथवा क्या बहरे और गूँगे आदमी ज्ञान-तंतुओं पर चित्रित चित्रों की सहायता से भावना, कल्पना, विचार या स्मरण नहीं करते ?

फिर विचार की बड़ी जरूरत भी नहीं देख पड़ती। क्या बिना विचारणा के काम नहीं चल सकता ? सच पूछिए, तो जगत् में बहुत कम विचारणा होती है। हरबर्टस्पेंसर तक के बड़े-बड़े ग्रंथ विचारणा के बल पर नहीं लिखे गए। स्पेंसर ने अपने आत्म-चरित में ऐसा ही लिखा है। उसका कथन है कि मैंने उन्हें अपनी प्रतिभा के बल से लिखा है। मेरे मन में आप-ही-आप उनको लिखने की इच्छा उत्पन्न हुई। उसी ने मुझसे उन्हें लिखाया। दुनिया में जितने बड़े-बड़े ग्रंथ देख पड़ते हैं, उनमें बहुत-से ऐसे हैं, जिनको उनके लिखनेवालों ने अपने मस्तिष्क, अपने मन, अपनी प्रतिभा की प्रेरणा से ही लिखा है। जिस तरह मेदे के द्वारा पाचन-क्रिया होने से खून और पित्त पैदा होता है; जिस तरह प्रजोत्पादक अंगों के द्वारा प्रजा की उत्पत्ति होती है; उसी तरह बड़े-बड़े आदमियों के प्रतिभा-पूर्ण मस्तकों से कविता, किताबें और इमारतों की कल्पनाएँ निकलती हैं।

कालिदास ने रघुवंश लिखा और भवभूति ने उत्तरराम-चरित। पर किस तरह उनके मन में इनको लिखने की बात

आई आप-ही-आप। विचार करने की जरूरत नहीं पड़ी। पहले-पहल उनके मस्तिष्क में इनको लिखने की इच्छा स्वतः संभूत हुई। संसार में एक भी मनुष्य ऐसा नहीं हुआ, जिसने अपनी इच्छा से कोई ऐसा काम किया हो, जिसका या जिसकी सामग्री का अस्तित्व पहले ही से विद्यमान न रहा हो।

यदि कोई जानवर कोई काम किसी इरादे से करे, और जिस ज्ञानात्मिका बुद्धि से वह इरादा पैदा हुआ हो, वह बुद्धि स्वाभाविक हो, तो उससे क्या? उससे कोई नया सिद्धांत नहीं निकलता। चाहे वह स्वाभाविक हो, चाहे उपार्जित—बात वही रहती है। उससे ज्ञान का न होना—बुद्धि का न होना—नहीं साबित होता। ज्ञान चाहे जिस प्रकार का हो, वह है तो। ताज-महल की कल्पना करनेवाले में भी ज्ञान था, और घोंसला या मार बनानेवाले जीवों में भी वह है। किसी में कम, किसी में ज्यादा। मकड़ी, चिड़ियाँ, लोमड़ी और चींटी इत्यादि छोटे-छोटे जीव तक अपने-अपने काम से ज्ञान रखने का प्रमाण देते हैं, और ज्ञान मन का व्यापार है। मन से ज्ञान का बहुत बड़ा संबंध है। तो फिर यह कैसे कह सकते हैं कि जान-वरों में मानसिक विचार की शक्ति नहीं है?

जो कुछ हम सोचते या करते हैं, वह इंद्रियों पर उठे हुए चित्र का कारण नहीं है। उसका कारण ज्ञान है। एक किताब या कुर्सी की तसवीर मक्खी की इंद्रियों पर भी वैसी ही खिंचेगी, जैसी पालने पर पड़े हुए एक छोटे बालक की इंद्रियों पर। पर

जिसमें जितना ज्ञान होता है, जिसमें जितनी बुद्धि होती है, उसी के अनुसार सांसारिक पदार्थों या शक्तियों की ज्ञानगत मूर्तियों का महत्त्व, न्यूनाधिक भाव में, सब कहीं देख पड़ता है। जिस भाव से हम एक किताब को देखेंगे, भैंस उस भाव से उसे न देखेगी। पर देखेगी ज़रूर, और उसका चित्र भी उसकी ज्ञानेंद्रियों पर ठीक वैसा ही उतरेगा, जैसा आदमियों की इंद्रियों पर उतरता है।

इसमें संदेह नहीं कि सोचना या विचार करना—चाहे वह ज्ञानात्मक हो, चाहे न हो—मस्तिष्क की क्रिया है। अतएव उसका संबंध मन से है। और, आदमी से लेकर चींटी तक, सब जीवधारियों में, अपनी-अपनी स्थिति और आवश्यकता के अनुसार, मन होता है। यह नहीं कि किसी में वह बिलकुल ही न होता हो। इससे यह सिद्ध है कि जिस सिद्धांत का उल्लेख ऊपर हुआ, वह ठीक नहीं।

{ मई, १९०६

१०—क्या चिड़ियाँ भी सूँघती हैं ?

क्या चिड़ियों में भी घ्राण-शक्ति होती है ? क्या चिड़ियाँ भी सूँघती हैं ? क्या चिड़ियों को भी सुगंध-दुर्गंध का ज्ञान होता है ? इस विषय में पश्चिमी देशों के विद्वान् आजकल अपनी-अपनी अक़ल लड़ा रहे हैं। वे तरह-तरह के तजुर्बे कर रहे हैं।

तरह-तरह की चिड़ियाँ पालकर वे उनकी परीक्षा कर रहे हैं। चिड़ियों के मग़ज़ की परीक्षा करके उन्होंने इस बात का पता लगाया है कि घ्राण-शक्ति के ज्ञान-तंतु उनमें होते तो हैं, परंतु बहुत ही सूक्ष्म रूप में होते हैं। उनकी दशा ऐसी नहीं होती कि उनके द्वारा चिड़ियों को घ्राणज ज्ञान हो सके। सामुद्रिक चिड़ियों की अपेक्षा ज़मीन पर रहने और वहीं अपना शिकार ढूँढ़कर पेट भरनेवाली चिड़ियों में घ्राणेंद्रिय का आकार कुछ बड़ा होता है। पर अभी तक यह बात विज्ञानियों के ध्यान में नहीं आई कि यह इंद्रिय घ्राण का ज्ञान कराने ही के लिये है, अथवा इससे और भी कोई काम निकलता है।

मांस खानेवाली चिड़ियों की परीक्षा से यह बात सिद्ध हुई है कि यदि यह इंद्रिय उनमें हो भी, तो भी वे उससे घ्राण लेने का फ़ायदा नहीं उठातीं। उसकी सहायता से वे अपनी ख़ुराक का पता सूँघकर नहीं लगा सकतीं। अगर किसी जानवर की लाश किसी चीज़ से छिपा दी जाय या किसी चीज़ की आड़ में कर दी जाय, तो गीध, कौए और चील्ह वग़ैरह मांस-भक्षी चिड़ियाँ उसे नहीं ढूँढ़ सकतीं। सूँघकर वे उसका पता नहीं लगा सकतीं। डॉक्टर ग्यूलेमार्ड ने इस बात को परीक्षा से सिद्ध किया है। बहुत मौक़ों पर ऐसा हुआ है कि शिकार किए हुए जानवर को वह घर नहीं ले जा सके। भारी होने के सबब से उसे वह अकेले नहीं उठा सके। इस हालत में, उन्होंने उस जानवर का पेट फाड़कर उसकी आँतें

वग़ैरह फेंक दी हैं, और लाश को वहीं, पास के किसी गढ़े में, छिपा दिया है। आदमियों को साथ लेकर लाश उठा ले जाने के लिये जब वह लौटे हैं, तब उन्होंने देखा है कि सैकड़ों मांसख़ोर चिड़ियाँ आलायश वग़ैरह के पास बैठी हैं। पर वहीं, ज़रा दूर पर, गढ़े के भीतर छिपाई हुई लाश के पास वे नहीं गईं। उसका कुछ भी पता उनको नहीं लगा। यदि उनमें घ्राण-शक्ति होती, तो सूँघकर वे ज़रूर उसे ढूँढ़ निकालतीं।

अलेगज़ेंडर हिल साहब ने अनाज खानेवाली चिड़ियों की घ्राण-शक्ति की परीक्षा की है, और उसका नतीजा उन्होंने प्रकाशित किया है। उन्होंने अनाज की एक छोटी-सी ढेरी लगाकर उसके भीतर रोटी के टुकड़े रख दिए। इन टुकड़ों को उन्होंने पहले ही से हींग, कपूर, लेवेंडर इत्यादि उग्र गंधवाली चीज़ों से ख़ूब लपेट दिया। तब अनाज चुनने के लिये उन्होंने एक भूखे मुर्ग़े को छोड़ा। उसने चुनते-चुनते रोटी पर चोंच मारी, और उसके भीतर उसने चोंच प्रवेश कर दी। एक सेकेंड में उसने चोंच खींच ली, और गरदन ऊपर उठाकर उसे ज़रा हिलाया। बस, फिर वह खाने लगा, और रोटी के टुकड़ों को एक-एक करके खा गया। इस जाँच से अच्छी तरह यह न मालूम हुआ कि मुर्ग़े को गंध से घृणा है या प्रीति। इस कारण हिल साहब ने एक और जाँच की। इस बार की जाँच पहले से अधिक कड़ी थी।

उन्होंने छलनी की तरह के एक बर्तन को उल्टा करके उसके

ऊपर दाना रख दिया। बर्तन के नीचे क्लोरोफ़ार्म (ज्ञान-नाशक दवा, जिसे सुँघाकर डॉक्टर लोग चीड़-फाड़ का काम करते हैं) में डुबोकर स्पंज का एक टुकड़ा उन्होंने रक्खा। तब दाना चुगने के लिये एक मुर्ग़ी को छोड़ा। जब थोड़ा दाना चुगने से रह गया, तब उस चिड़िया ने बर्तन के ऊपर धीरे-धीरे चोंच मारना शुरू किया। उसने बार-बार अपना सिर ऊपर उठाया, और बाज़ू फैलाए। इससे यह ज़ाहिर हुआ कि क्लोरोफ़ार्म का कुछ असर उस पर ज़रूर हुआ। परंतु जब उन्होंने मुर्ग़े को उसी तरह चुगने के लिये छोड़ा, तब उस हज़रत ने ज़रा भी इस बात का चिह्न नहीं ज़ाहिर किया कि उस पर क्लोरोफ़ार्म का कुछ भी असर हुआ हो। इसके बाद परीक्षक ने 'प्रूज़िक एसिड' को छलनी के नीचे रक्खा। यह बहुत ही तीव्र और उग्र-गंधी तेज़ाब है। फिर मुर्ग़े महाशय चुगने के लिये छोड़े गए। तेज़ाब की तेज़ी का ख़याल करके हिल साहब वहाँ से हट आए। कुछ देर तक उस वीर मुर्ग़े ने मामूली तौर पर झट-झट दाना चुगा। किसी तरह की कोई ग़ैर-मामूली बात उसमें नहीं देख पड़ी। पर ज़रा देर बाद उसे चक्कर आने लगा। एक टाँग को दूसरी पर रखकर वह खड़ा हो गया। बार-बार अपनी चोंच को वह ऊपर उठाने लगा। फिर कुछ देर में वह वहाँ से हट आया, और अपने रहने की जगह चला गया। वहाँ अपना सिर नीचे झुकाकर और पंख फैलाकर वह खड़ा रहा। दस मिनट तक वह इस हालत में रहा। इसके बाद वह

उस छलनी के पास फिर वापस आया। पर दुबारा दाना चुगने की कोशिश उसने नहीं की। देखने पर मालूम हुआ कि उसकी चोटी ख़ून से भीगी हुई थी।

इन परीक्षाओं से इस बात का अच्छी तरह पता नहीं लगा कि चिड़ियों में घ्राण-शक्ति होती है अथवा नहीं। और, होती है, तो कितनी होती है; किस-किस चिड़िया में होती है, और किसमें कम और किसमें अधिक होती है। इस विषय की जाँच जारी है। आशा है, कुछ दिनों में कोई निश्चित सिद्धांत स्थिर हो जाय।

{ एप्रिल, १९०९

११—पशुओं में बोलने की शक्ति

अब तक लोगों का यही ख़याल था कि पशु मनुष्यों की भाषा नहीं बोल सकते। परंतु योरप और अमेरिका के प्राणि-तत्त्व-वेत्ताओं ने अपने अनुभवों द्वारा इस विचार को असत्य सिद्ध कर दिया है। उन्होंने दिखला दिया है कि शिक्षा पाने पर पशु मनुष्यों की बोली थोड़ी-बहुत बोल सकते हैं। प्राणि-विद्या के जिन पंडितों ने इस विषय की विशेष आलोचना की है, उनमें अध्यापक वेल, मूसलर, किनेमैन, कार्नेस तथा गार्नर मुख्य हैं। इनमें से केवल प्रथम दो प्राणि-विद्या-विशारदों के अनुभवों का संक्षिप्त वृत्तांत हम सुनाते हैं। पहले वेल साहब के अनुभवों का सारांश सुनिए—

अध्यापक बेल के पिता चिकित्सक थे। वह तोतलेपन का बहुत अच्छा इलाज करते थे। अतएव सैकड़ों तोतले अपनी चिकित्सा कराने के लिये उनके पास आया करते थे। उन्हीं तोतलों का मुँह देखते-देखते एक बार अध्यापक बेल के मन में यह बात आई कि क्या कुत्तों के मुँह से भी मानवीय शब्द कहलाए जा सकते हैं। इस बात की परीक्षा करने के लिये उन्होंने एक कुत्ता पाला, और उसके मुँह से शब्द कहलवाने की कोशिश करने लगे। कुछ दिनों तक परिश्रम करने के बाद वह कुत्ता अँगरेजी का 'मामा' (Mamma = मा) शब्द उच्चारण करने लगा। कुछ दिनों बाद वह 'ग्रांड मामा' (Grand Mamma = दादी) भी कहने लगा। यह देखकर लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ, और यह आशा हुई कि वह सिखलाए जाने पर और शब्द भी बोल सकेगा। अतएव पूर्वोक्त अध्यापक महाशय ने उसे 'हाउ आर यू ग्रांड मामा' (How are you Grand Mamma = दादी, कैसी तबियत है?) यह वाक्य सिखाना प्रारंभ किया। कुछ दिनों में वह कुत्ता यह वाक्य भी अस्पष्ट रूप से उच्चारण करने लगा। यह देखकर बेल साहब तथा उनके पड़ोसियों के हर्ष और विस्मय की सीमा न रही।

अध्यापक बेल की पशुशाला में अन्य पशुओं के साथ बहुत-से बंदर, कुत्ते तथा तोते भी हैं। इन्हें वह बहुत प्यार करते हैं। कारण यह कि ये प्राणी मानव-भाषा के कोई-कोई शब्द

अच्छी तरह बोल सकते हैं। इनमें से कोई ऐसे भी हैं, जो कुछ वर्ण लिख सकते हैं। पीटर नाम का एक बंदर है। कहते हैं, वह अँगरेज़ी-वर्ण-माला साफ़-साफ़ लिख सकता है। वल साहब के तोते भी मनुष्य की बोली बोलने में निपुण हैं। परंतु आपका मत है कि अन्य पशु-पक्षियों की अपेक्षा बंदर और कुत्ते मानवीय भाषा बोलना अधिक अच्छी तरह और अधिक जल्दी सीख सकते हैं; यहाँ तक कि आप शब्दोच्चारण के लिये कुत्तों के कंठ की गठन-प्रणाली को मानव-कंठ की गठन-प्रणाली से अधिक उपयोगी बतलाते हैं।

अब तक जो हमने लिखा, उससे यह प्रकट है कि यदि परिश्रम-पूर्वक शिक्षा दी जाय, तो बंदर और कुत्ते मानव-भाषा के कुछ शब्द बोल सकते हैं। परंतु हाल ही में, जर्मनी में, एक ऐसे अद्‌भुत कुत्ते का पता लगा है, जो विशेष शिक्षा पाए विना ही मनुष्यों की तरह कुछ शब्दों द्वारा बातचीत कर सकता है। उसकी भाव-व्यंजक भाषा केवल तोता-रटंत नहीं, किंतु स्वाभाविक मानसिक विकास का फल है। इस विचित्र कुत्ते ने वैज्ञानिक संसार में हलचल-सी डाल दी है। इसका नाम डान है।

डान ने शैशवावस्था में ही अपनी असाधरण बुद्धिमत्ता का परिचय दिया था। उसके शैशवकाल की बहुत-सी आश्चर्य-जनक बातें प्रसिद्ध हैं। कहते हैं, उसको कभी किसी प्रकार की शिक्षा नहीं दी गई। उसमें अन्य गुणों की तरह भाषा का आप-ही-आप विकास हुआ। वह जब चाहता है, तब खुद ही

बातचीत करने लगता है, और जब नहीं चाहता, तब हजार कोशिश करने पर भी नहीं बोलता।

जिस समय वह छ महीने का था, उसी समय उसने अर्थ-युक्त शब्दों का उच्चारण करके लोगों को आश्चर्य में डाल दिया था। एक बार वह अपने स्वामी की मेज के सामने आकर खड़ा हुआ, और उनकी ओर इस प्रकार देखने लगा, मानो कुछ चाहता हो। मालिक ने पूछा—"क्या तुम कुछ चाहते हो?" उसने स्पष्ट रूप से अपने देश की जर्मन-भाषा में उत्तर दिया—"हाँ, चाहता हूँ।" इस अद्भुत कांड को देखकर मालिक के आश्चर्य की सीमा न रही। उस दिन से वह उसे विशेष आराम से रखने लगे।

डान बड़े ही स्वाधीन स्वभाव का कुत्ता है। वह प्रतिदिन सबेरे बाहर टहलने जाता है, और जहाँ चाहता है, वहाँ घूमता है। कभी-कभी वह अपने प्रभु के मित्रों के घर पर भी उनसे मिलने जाता है। वहाँ पहुँचकर वह आदमियों ही की तरह दरवाजे का खटका हटाता है और फिर किवाड़ खोलकर बेधड़क अंदर चला जाता है। वह घर के लोगों से थोड़ी-बहुत बातचीत भी करता है।

कभी-कभी डान स्कूल जानेवाले लड़कों से भी मिलता है और बातचीत करता है। एक दफे की बात है कि एक बुढ़िया खाने का कुछ सामान टोकरी में लिए हुए बाजार जा रही थी। उसे देखते ही डान उसके पास पहुँचा, और जर्मन-भाषा में

स्पष्ट रूप से कहने लगा—"डान को भूख लगी है, रोटी दो" (Don hunger kitchen haleen)। यह सुनते ही बुढ़िया काँप उठी। उसने समझा, यह कुत्ता शायद भूतग्रस्त है। अतएव उसने अपनी टोकरी फेंक दी, और चिल्लाकर भागी।

कुछ समय हुआ, डॉक्टर ब्रूसलर आदि कई विद्वानों ने डान की वैज्ञानिक परीक्षा की थी। उस समय उसने उन लोगों से उसी तरह स्वाधीनता के साथ बातचीत की थी, जिस तरह अपने मालिक के साथ करता है। परीक्षकों ने सारे वार्तालाप को फ़ोनोग्राफ़ में भर लिया, और अनेक प्राणि-शास्त्र-वेत्ताओं के पास उसके रिकार्ड भेजे। जिन लोगों ने उन रिकार्डों को सुना, उनका कहना है कि डान और मनुष्य की बोली में कुछ भी अंतर नहीं; वह शब्दों का यथास्थान शुद्ध-शुद्ध उच्चारण करता है।

हाल ही में डॉक्टर ब्रूसलर ने डान के विषय में एक बड़ा ही कौतूहल-जनक व्याख्यान दिया है। इस व्याख्यान में आपने साधारणतः सब पशुओं और विशेषतः कुत्ते के मानव-भाषा बोलने की समस्या की वैज्ञानिक आलोचना की है। आपके कथन का सारांश सुनिए—

आप कहते हैं कि मनुष्य की वागिंद्रिय से पशु-पक्षियों की इंद्रिय की गठन-प्रणाली पृथक् होने पर भी जिस तरह कोई-कोई पक्षी मनुष्य की-सी बोली बोल सकते हैं, उसी तरह उससे भी अधिक अच्छी तरह बंदर और कुत्ते भी मानवी भाषा बोल

बातचीत करने लगता है, और जब नहीं चाहता, तब हजार कोशिश करने पर भी नहीं बोलता।

जिस समय वह छ महीने का था, उसी समय उसने अर्थ-युक्त शब्दों का उच्चारण करके लोगों को आश्चर्य में डाल दिया था। एक बार वह अपने स्वामी की मेज के सामने आकर खड़ा हुआ, और उनकी ओर इस प्रकार देखने लगा, मानो कुछ चाहता हो। मालिक ने पूछा—"क्या तुम कुछ चाहते हो?" उसने स्पष्ट रूप से अपने देश की जर्मन-भाषा में उत्तर दिया—"हाँ, चाहता हूँ।" इस अद्भुत कांड को देखकर मालिक के आश्चर्य की सीमा न रही। उस दिन से वह उसे विशेष आराम से रखने लगे।

डान बड़े ही स्वाधीन स्वभाव का कुत्ता है। वह प्रतिदिन सबेरे बाहर टहलने जाता है, और जहाँ चाहता है, वहाँ घूमता है। कभी-कभी वह अपने प्रभु के मित्रों के घर पर भी उनसे मिलने जाता है। वहाँ पहुँचकर वह आदमियों ही की तरह दरवाजे का खटका हटाता है और फिर किवाड़े खोलकर बेधड़क अंदर चला जाता है। वह घर के लोगों से थोड़ी-बहुत बातचीत भी करता है।

कभी-कभी डान स्कूल जानेवाले लड़कों से भी मिलता है और बातचीत करता है। एक दफे की बात है कि एक बुढ़िया खाने का कुछ सामान टोकरी में लिए हुए बाजार जा रही थी। उसे देखते ही डान उसके पास पहुँचा, और जर्मन-भाषा में

स्पष्ट रूप से कहने लगा—"डान को भूख लगी है, रोटी दो" (Don hunger kitchen haleen)। यह सुनते ही बुढ़िया काँप उठी। उसने समझा, यह कुत्ता शायद भूतग्रस्त है। अतएव उसने अपनी टोकरी फेंक दी, और चिल्लाकर भागी।

कुछ समय हुआ, डॉक्टर बूसलर आदि कई विद्वानों ने डान की वैज्ञानिक परीक्षा की थी। उस समय उसने उन लोगों से उसी तरह स्वाधीनता के साथ बातचीत की थी, जिस तरह अपने मालिक के साथ करता है। परीक्षकों ने सारे वार्तालाप को फ़ोनोग्राफ़ में भर लिया, और अनेक प्राणि-शास्त्र-वेत्ताओं के पास उसके रिकार्ड भेजे। जिन लोगों ने उन रिकार्डों को सुना, उनका कहना है कि डान और मनुष्य की बोली में कुछ भी अंतर नहीं; वह शब्दों का यथास्थान शुद्ध-शुद्ध उच्चारण करता है।

हाल ही में डॉक्टर बूसलर ने डान के विषय में एक बड़ा ही कौतूहल-जनक व्याख्यान दिया है। इस व्याख्यान में आपने साधारणतः सब पशुओं और विशेषतः कुत्ते के मानव-भाषा बोलने की समस्या की वैज्ञानिक आलोचना की है। आपके कथन का सारांश सुनिए—

आप कहते हैं कि मनुष्य की वागिंद्रिय से पशु-पक्षियों की इंद्रिय की गठन-प्रणाली पृथक् होने पर भी जिस तरह कोई-कोई पक्षी मनुष्य की-सी बोली बोल सकते हैं, उसी तरह उससे भी अधिक अच्छी तरह बंदर और कुत्ते भी मानवी भाषा बोल

सकते हैं। केवल इतना ही नहीं, किंतु आप उनके कंठ की बनावट को शब्दोच्चारण के लिये मानव-कंठ की बनावट से भी अधिक उपयोगी बतलाते हैं।

वास्तव में डान बड़ा ही अद्भुत जंतु है। वह इस बात का पहला वैज्ञानिक दृष्टांत है कि कुत्ते भी मनुष्य की-सी सार्थक भाषा बोल सकते हैं, तथा उसके द्वारा अपने मनोगत भावों को ठीक-ठीक प्रकट करके अपने दैनिक अभावों की पूर्ति कर सकते हैं।

इससे यह न समझना चाहिए कि डान दिन-भर बातें ही किया करता है। आवश्यकता पड़ने पर जब उसका जी चाहता है तभी वह बोलता है। मन विषएण या शरीर अस्वस्थ होने पर या दुर्दिन के समय वह बातचीत करना नहीं चहता। उस समय केवल चुपचाप पड़े रहना ही उसे अच्छा लगता है। यह अकसर देखा गया है कि अधिक बातचीत करने से वह थक जाता है। कारण यह कि भाषा मानसिक व्यापार है, और पशुओं में मानसिक शक्ति कम है। इसलिये थोड़ा-सा भी मानसिक परिश्रम करने से वह थक जाता है।

डान शिकारी जाति का कुत्ता है। वह बड़ा ही सुंदर है। उसकी आँखें प्रतिभा-व्यंजक हैं। सच पूछिए, तो उसकी आँखों से मानवीय भाव साफ़-साफ़ झलकता है, और उसकी गति तथा आचरण इस बात को अच्छी तरह प्रकट करते हैं कि वह मनुष्यों और कुत्तों का मध्यवर्ती जीव है।

डॉक्टर बूसलर के व्याख्यान का यही सारांश है। व्याख्यान के अंत में डॉक्टर साहब ने अपनी कही हुई बातों को प्रमाणित करने के लिये सब लोगों को डान के दर्शन कराए, और भरी सभा में उसकी परीक्षा ली। पहले उससे पूछा गया कि तुम्हारा नाम क्या है? उसने फ़ौरन् ही गंभीर स्वर से उत्तर दिया—"डान।" इसके बाद परिष्कृत जर्मन भाषा में डॉक्टर बूसलर और डान के बीच निम्न-लिखित प्रश्नोत्तर हुए—

बूसलर—"तुम्हें कैसा जान पड़ता है?"

डान—"भूख लगी है।"

बूसलर—"क्या तुम कुछ खाना चाहते हो?"

डान—"हाँ चाहता हूँ।"

रोटी का एक टुकड़ा दिखाकर बूसलर साहब ने पूछा—"यह क्या है?"

उसने तुरंत ही उत्तर दिया—"रोटी।"

तत्पश्चात् उससे और भी बहुत-से प्रश्न किए गए, जिनका उसने ठीक-ठीक उत्तर दिया।

डान यों तो कितने ही शब्द बोल सकता है, परंतु जितने शब्दों का वह ठीक-ठीक और बहुधा प्रयोग करता है, उनकी संख्या नौ है। इससे यह न समझना चाहिए कि केवल इतने ही शब्द उसने रट लिए हैं, और उन्हीं को दोहराता है। डान इन शब्दों का शुद्ध उच्चारण करना तथा इन्हें यथास्थान रख-कर वाक्य बनाना और उन्हें उचित अवसर पर आवश्यकता-

नुसार प्रकट करना भी जानता है। वह मनुष्योंकी तरह बड़ी खूबी से अपने मनोगत भाव प्रकाशित करता तथा प्रश्नों का उत्तर बड़ी सफाई से देता है। फिर डान की शब्द-संख्या को भी कम न समझना चाहिए; क्योंकि जब हम यह देखते हैं कि आस्ट्रेलिया के मूल-निवासियों की शब्द-संख्या केवल डेढ़ सौ है, तथा सभ्य देशों में रहनेवाले लोग भी प्रायः दो सौ से अधिक शब्द अपने रोजाना बोल-चाल में इस्तेमाल नहीं करते, तब हमें यह जान पड़ता है कि वास्तव में कुत्ते के रूप में डान मनुष्य ही है।

{ मार्च, १९१३

१२—विद्वान् घोड़े

अमेरिका के एक ऐसे कुत्ते का हाल पाठक सुन चुके हैं, जो मनुष्य की बोली बोल सकता है। अब विद्वान् घोड़ों का भी वृत्तांत सुन लीजिए। यह वृत्तांत भी अमेरिका के प्रसिद्ध पत्र 'साइंटिफिक् अमेरिकन' में प्रकाशित हुआ है। इसे सहस्र रजनी-चरित्र की कहानी या गप न समझिए। इन बातों की परीक्षा पंडितों ने की है, और इनके सच होने का सार्टिफिकेट भी दिया है। जिन लोगों ने इन बातों की सचाई में संदेह किया था, और इन घोड़ों की समझ और गणित-शक्ति की बात को इनके मालिकों की चालाकी बताई थी, उनकी आलो-

चनाओं का खंडन अनेक पंडितों ने अच्छी तरह किया है।

किसी नए वैज्ञानिक तत्त्व का पता लगाने पर पता लगाने-वाले का कर्तव्य है कि उस विषय से संबंध रखनेवाली सारी बातें वह लिख ले। इसके बाद वह तत्संबंधी सिद्धांत ढूँढ़ निकालने की चेष्टा करे। यही व्यापक नियम है। पर जब कोई अलौकिक और अद्भुत बातें ज्ञात होती हैं, तब पहले यही देखना पड़ता है कि वे बातें सच भी हैं या नहीं; क्योंकि पहले तो उन पर लोगों का विश्वास ही नहीं होता। अतएव पहले उनकी सचाई का दृढ़ प्रमाण देना पड़ता है। सिद्धांत पीछे से निकाले जाते हैं। यह, घोड़ों की विद्वत्ता-संबंधी विषय, भी अलौकिक अतएव अविश्वसनीय-सा है। इसलिये पहले उसका संक्षिप्त वृत्तांत लिखकर उसकी सचाई का प्रमाण दिया जायगा। सिद्धांत पीछे से निकलते रहेंगे।

जर्मनी में एक महाशय रहते हैं। उनका नाम है हर वॉन आस्टिन। उन्होंने एक घोड़ा पाला और उसका नाम रक्खा-हंस। इस बात को कई वर्ष हुए। उन्होंने उसे अन्यान्य बातों के सिवा जोड़, बाकी, गुणा आदि के प्रश्न हल करना भी सिखाया। इस प्रकार उन्होंने यह सिद्ध किया कि हंस में सोचने, समझने और याद रखने की शक्तियाँ विद्यमान हैं। इस घोड़े के गणित-ज्ञान की परीक्षा डॉक्टर फ़ंस्ट नाम के

एक विद्वान् ने की। पर उसकी राय में इस घोड़े के संबंध की सारी बातें आस्टिन की चालाकी का कारण मालूम हुईं। अतएव उसने अपनी जाँच का फल बड़े ही प्रतिकूल शब्दों में प्रकाशित किया। आस्टिन ने हर अंक के लिये अपने घोड़े की टाप के ठोकों की संख्या नियत कर दी थी।

उदाहरणार्थ—१ के लिये एक ठोका, २ के लिये दो, ३ के लिये तीन। इसी तरह और भी समझिए। जब उस घोड़े के सामने बोर्ड पर जोड़ने, घटाने या गुणा करने के लिये कुछ संख्याएँ लिख दी जातीं, तब वह पूछे गए प्रश्न का उत्तर अपनी टापों के ठोकों से देता। इस पर डॉक्टर फ़ंस्ट ने आस्टिन पर यह इलज़ाम लगाया कि ज्यों ही घोड़ा उत्तर-सूचक अंकों को बतानेवाले ठोकों की अंतिम संख्या पर पहुँचता है, त्यों ही आस्टिन साहब कुछ इशारा कर देते हैं। बस इशारे को पाते ही घोड़ा वहीं रुक जाता है, और ठोंके नहीं लगाता। अतएव उसकी टापों के ठोकों की संख्या से सही जवाब निकल आता है। यदि मालिक इशारा न करे, तो घोड़ा कभी सही जवाब न दे सके। इस पर अख़बारों में बहुत दिन तक वाद-विवाद होता रहा। कितनों ही ने यह सब आस्टिन साहब की बाज़ीगरी बताई। कितनों ही ने कहा कि यदि आस्टिन साहब के इशारों से भी हंस ये सब काम करता हो, जिनके किए जाने की घोषणा की गई है, तो यह साबित होता है कि और घोड़ों की अपेक्षा वह अधिक

बुद्धिमान् है, और उसमें सोचने, समझने, अर्थात् विचार करने की भी शक्ति है।

जर्मनी में एक जगह एलबरफ़ेल्ड है। वहाँ क्राल नाम के एक धनी रहते हैं। वह बहुत बड़े व्यापारी हैं। विज्ञान से भी आपको प्रेम है। जब उन्होंने हंस की बुद्धिमत्ता की बातें अख़-बारों में पढ़ीं, तब उन्होंने इस घोड़े को प्रत्यक्ष देखना चाहा। वह आस्टिन के अस्तबल में गए। हंस को उन्होंने देखा, और बड़ी कड़ी परीक्षाएँ लीं। उन्होंने ऐसा प्रबंध किया कि आस्टिन के लिये इशारा देना असभव हो गया। तिस पर भी हंस ने उनके दिए हुए जोड़, बाक़ी और गुणा आदि के प्रश्नों के सही-सही उत्तर दिए। इस पर क्राल को विश्वास हो गया कि यह घोड़ा अवश्य ही अलौकिक बुद्धिमान् है। उन्होंने कहा कि जिन विज्ञान-शास्त्रियों ने इस घोड़े की बुद्धि-मानी क्या, विद्वत्ता में शंका की है, उनकी शंका को मैं निर्मूल सिद्ध करने की चेष्टा करूँगा। यह कहकर वह अपने घर लौट आए।

घर आकर क्राल ने दो अरबी घोड़े ख़रीदे। एक का नाम उन्होंने मुहम्मद रक्खा, दूसरे का जरिफ़। यह बात १९०८ की है। इसी सन् के नवंबर की दूसरी तारीख़ को उन्होंने इन घोड़ों को सिखाना शुरू किया। शिक्षा का ढंग उन्होंने प्रायः वही रक्खा, जो आस्टिन का था। बहुत ही थोड़ा फेर-फार करके उस प्रणाली को कुछ और सरल अवश्य कर दिया।

उन्होंने भी आस्टिन ही की तरह प्रत्येक अंक के लिये घोड़ों के खुरों के ठोकों की संख्या नियत कर दी। इकाई के अंकों के लिये वह दाहने पैर के खुर से और दहाई के अंकों के लिये बाएँ से काम लेने लगे। तीन ही दिन में, बोर्ड पर लिखे गए, १, २, ३,—ये तीन अंक—घोड़े सीख गए, और उन अंकों पर मुँह रखकर पूछे अंक भी वे बताने लगे। दस दिन बाद मुहम्मद ४ तक गिनने लगा। इसके बाद क्राल ने उन दोनों को इकाई और दहाई का भेद सिखाया। तब वे अपने दाहने-बाएँ पैरों के खुरों से उनको बताने लगे। १२ दिन बाद मुहम्मद जोड़ और बाक़ी लगाने लगा। उसे ऐसे सवाल दिए जाने लगे—

१ + ३, २ × ५ इत्यादि
५–३, ४–२ इत्यादि

१८ नवंबर को क्राल साहब ने गुणा और भाग सिखाया, और २१ को कसर और कसरवाले अंकों का जोड़ आदि। दिसंबर में मुहम्मद ने कुछ शब्द जर्मन और कुछ फ्रेंच भाषाओं के सीख लिए, और इन भाषाओं में किए गए प्रश्नों को वह समझ भी लेने लगा। १९०६ के मई महीने में मुहम्मद वर्ग-मूल और घन-मूल भी सीख गया, और गणित के कठिन-से-कठिन प्रश्नों का उत्तर देने लगा। गणित-ज्ञान में उसने मनुष्य को भी मात कर दिया।

इसके बाद उन घोड़ों को पढ़ना और 'स्पेलिंग' करना

सिखाया जाने लगा। रोमन-वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर के लिये ११ और ६६ के बीच का कोई अंक निश्चित किया गया। चार ही महीने की शिक्षा से जरिफ़, चाहे जो शब्द उसके सामने उच्चारण किया जाय, उसके स्पेलिंग् कर लेने लगा—फिर चाहे वह शब्द कभी उसने बोर्ड पर लिखा देखा हो, चाहे न देखा हो। कल्पना कीजिए, उसके सामने पेपर (Paper)-शब्द बोला गया। बोलते ही वह P-A-P-E-R कह देगा। अर्थात् इन पाँचों वर्णों के लिये जो अंक निश्चित होंगे, उन्हें वह अपने पैरों के ठोंकों से बता देगा। जर्मन या फ्रेंच-भाषा में उन-उन भाषाओं के शब्द-विशेषों में जो वर्ण होंगे, उनकी वह कम परवा करेगा। परवा वह सिर्फ़ उच्चारण की ध्वनि की करेगा। अर्थात् ध्वनि से जो स्वर या व्यंजन व्यक्त होंगे, उन्हीं को वह अपनी टापों से बतावेगा। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि जर्मन, फ्रेंच और अँगरेज़ी आदि भाषाओं की शब्द-लिपि अस्वाभाविक है। इस बात को मनुष्य ही नहीं, घोड़े तक समझते हैं। इसी से वे ध्वनि के अनुसार, जैसा कि देवनागरी-लिपि में होता है, उनकी वर्ण-कल्पना करते हैं। अस्तु।

मुहम्मद एक दफ़े बीमार हो गया। उसकी पिछली टाँग में चोट आ गई। वह लँगड़ाने लगा। पशु-चिकित्सक डॉक्टर सिटमैन बुलाए गए। उन्होंने उसे देखा, और दवा बताकर चले गए। इसके बाद डॉक्टर डेकर उन घोड़ों को देखने

आए। उन्हें क्राल साहब जरिफ़ के पास ले गए। जाकर वह उससे बोले—डॉक्टर मिटमेन की तरह यह भी चिकित्सक हैं। इनका नाम है डेकर। परंतु यह मनुष्य की चिकित्सा करते हैं, पशुओं की नहीं। आध घंटे तक जरिफ़ का इम्तहान—जोड़, बाक़ी, गुणा भाग, वर्गमूल, घन-मूल तथा वर्ण-निर्देश या स्पेलिंग् में—हुआ। सबमें वह पास हो गया। इम्तहान हो चुकने पर क्राल ने उससे पूछा—क्या तुम्हें इनका नाम अब तक याद है? जरिफ़ ने अपने पैरों के ठोकों से उत्तर दिया—D-G-R याद रखिए, Dekker का सही-सही उच्चारण करने से प्रायः उन्हीं तीन वर्णों की ध्वनि मुँह से निकलती है। जरिफ़ इन वर्णों के बीच का स्वर भूल गया था। पर याद दिलाने पर उसने अपनी भूल सुधार दी।

आस्टिन के साथ वैज्ञानिकों ने कैसा सुलूक किया था—उसे किस तरह झूठा ठहराया था—यह बात क्राल साहब अच्छी तरह जानते थे। अतएव उन्होंने अपने घोड़ों की शिक्षा का समाचार अख़बारों में न प्रकाशित किया। कुछ ही विश्वसनीय विद्वानों और मित्रों को उसकी परीक्षा लेने दी। तीन साल बाद, उन्होंने, इस विषय पर, एक पुस्तक लिखकर प्रकाशित की। फल यह हुआ कि जर्मनी के विद्वानों और विज्ञान-वेत्ताओं में हलचल मच गई। उनके दो दल हो गए। एक अनुकूल पक्ष, दूसरा प्रतिकूल। उन दोनों ने अपने-अपने पक्ष को हाँकने में आकाश-पाताल एक कर दिया था। पशु-शास्त्र, मानस-शास्त्र,

प्राणि-विज्ञान आदि के पंडितों की समझ में यह बात आती ही नहीं कि घोड़े भी सिखलाने से इतने विद्वान् हो सकते हैं।

{ अगस्त, १६११

१३—एक हिसाबी कुत्ता

एक हिसाबी कुत्ते का हाल सुनिए। यह कुत्ता केवल हिसाबी ही नहीं, हिसाब लगा देने के सिवा यह मनुष्य की बोली भी समझ लेता और दी हुई कितनी ही आज्ञाओं का पालन भी अक्षरशः करता है। इसमें और भी एक बड़ा ही आश्चर्य-जनक गुण है। यह मनुष्य के मन की बात भी जान लेता है। अतएव कहना चाहिए कि यह पूर्ण-प्रज्ञ योगियों अथवा अंतर्दृष्टिधारी महात्माओं की बराबरी करनेवाला है।

अमेरिका के संयुक्त-राज्यों में एक राज्य या रियासत अरिज़ोना-नामक है। वहाँ ट्राओन नाम के एक इंजीनियर हैं। यह अजीब कुत्ता आप ही का है। आप ही ने इसे शिक्षा दी है। इसके विषय में, अमेरिका के अख़बारों में, अनेक लेख निकल चुके हैं। साइंटिफ़िक् अमेरिकन-नामक एक वैज्ञानिक पत्र के संपादकों ने इसकी परीक्षा करके जो बातें देखीं, प्रकाशित कीं। उनका उल्लेख, संक्षेप में, नीचे किया जाता है—

इस कुत्ते का नाम हेक्टर है। गणित के यह कितने ही

प्रश्न, बात-की-बात में, हल कर देता है। कितने ही मामूली काम करने के लिये आज्ञा पाने पर, बिना किसी इशारे या विशेष प्रकार की शिक्षा के, तुरंत उन्हें ठीक-ठीक कर दिखाता है। उदाहरण लीजिए—कमरे में एक कुरसी रक्खी थी। इसके मालिक ने आज्ञा दी—"हेक्टर, अपनी पिछली टाँगों के बल चलकर इस कुरसी की प्रदक्षिणा करो। जब कुरसी की पीठ के सामने आ जाओ, तब खड़े हो जाओ और भूँको। फिर उसी तरह कुरसी की प्रदक्षिणा करते हुए लौटो, और अपनी जगह पर जाकर बैठ जाओ।" हेक्टर ने इस आज्ञा का पालन अक्षरशः कर दिखाया। फिर उससे कहा गया—"रद्दी कागज़ की टोकरी को पंजे से उलट दो।" उसने वैसा ही किया। "अच्छा, अब मुँह के धक्के से उसे गिराओ।" हेक्टर ने गिरा दिया।

लोगों को यह शंका हो सकती है कि शायद सिखलाने से हेक्टर ऐसा करता हो। उसे यह सब काम करने की शिक्षा, बंदरों और रीछों की तरह, शायद पहले ही से दी गई हो। इस संदेह को दूर करने के लिये हेक्टर के और करतब सुनिए।

बिजली की जैसी घंटियाँ रेल के तार-घरों में रहती हैं, वैसी ही एक घंटी हेक्टर के सामने रक्खी गई। हेक्टर उसकी 'की' (खटका देनेवाली चाभी) पर अपना पंजा रखकर सावधानता-पूर्वक बैठ गया। तब उससे पूछा गया—"चार-

तियाँ ?" उत्तर में टन-टन-टन करके बारह बार घंटी बज उठी। "छ तिक्क ?" पूछते ही अठारह ठोंके घंटी पर पड़े। इसके बाद हेक्टर का मालिक बीस फ़ीट दूर जाकर खड़ा हुआ। पीठ उसने हेक्टर की तरफ़ की और मुँह दीवार की तरफ़। फिर उसने पूछा—"छ चौको ?" घंटी ने टन-टन जवाब दिया, चौबीस। इस परीक्षा का फल देखकर भी शंका हुई कि कहीं किसी ढब से इस कुत्ते को इन सब प्रश्नों के उत्तर पहले ही से न सिखला दिए गए हों। इस कारण और भी गहरी और कठिन परीक्षा की ठहरी। परीक्षा लेनेवाले महाशय ट्राओन साहब के पास गए। वह हेक्टर से बहुत दूर खड़े हुए थे। उनके कान में परीक्षकजी ने धीरे से—इतना धीरे से कि दो फ़ीट की दूरी पर खड़ा हुआ आदमी भी न सुन सके—कहा, "पाँच सत्ते ?" बस, उनके कान में यह कहना था कि हेक्टर की घंटी ने ३५ ठोंके लगा दिए अर्थात् प्रश्न को कान से सुना भी नहीं, पर उत्तर दे दिया, और ठीक दे दिया। दिया भी इतनी शीघ्रता से कि ठोंकों का गिना जाना मुश्किल हो गया। इसी तरह जोड़, बाक़ी और गुणा के कितने ही प्रश्न पूछे गए, और सबके उत्तर हेक्टर ने सही-सही दे दिए। दो-एक दफ़े उससे भूलें भी हुईं। पर ये भूलें शायद गिननेवालों की ही हों, क्योंकि घंटी पर ठोंके इतनी शीघ्रता से पड़ते थे कि एक ठोंके को दो अथवा दो को एक गिन जाना बहुत संभव था।

इन परीक्षाओं से यह सूचित हुआ कि इस कुत्ते में कोई दैवी शक्ति है। इसे एक प्रकार का अंतर्ज्ञान या दिव्यदृष्टि प्राप्त है। इसी से यह दूसरे के मन की बात ही नहीं जान लेता, किंतु किए गए प्रश्नों का उत्तर भी इसे वही अदृष्ट-शक्ति बता देती है। ऐसी शक्ति हेक्टर में सचमुच ही है या नहीं, इसकी जाँच के लिये पहले से भी कठिन प्रश्न पूछे गए। यह सारी परीक्षा साइंटिफ़िक अमेरिकन के दफ़्तर में हुई। हेक्टर से पूछा गया—"हेक्टर, ६ का वर्गमूल तो बताओ।" हेक्टर ने सुनते ही घंटी बजाई। टन-टन-टन। सुनकर बड़े-बड़े ज्ञानी-विज्ञानी दंग रह गए। जिस मनुष्य ने वर्गमूल का कभी नाम न सुना हो, वह भी ऐसे प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकता, फिर कुत्ता! अतएव यह बात निश्चय-पूर्वक प्रमाणित हो गई कि हेक्टर को अलौकिक कोई शक्ति या अंतर्दृष्टि ज़रूर प्राप्त है। वही उससे इस तरह के अद्भुत-अद्भुत काम कराती है। यह कौन-सी शक्ति या दृष्टि है, और किस तरह कुत्तों तक को प्राप्त हो जाती है, इसका पता अमेरिका-वालों को कब लगेगा, मालूम नहीं। भारत में तो ऐसे महात्मा हो गए हैं। और शायद अब भी कहीं-कहीं हों, जिनकी आज्ञा से भैंसे वेद-पाठ करने लगते हैं।

{ नवंबर, १९१४

१४—बंदरों की भाषा

संयुक्त-राज्य, अमेरिका, के रहनेवाले अध्यापक गार्नर ने अपनी प्रायः सारी-की-सारी उम्र बंदरों की भाषा का ज्ञान-संपादन करने में खर्च कर डाली। जिस समय आप आफ्रिका के जंगलों में बंदरों की बोली सीखने का प्रयत्न कर रहे थे, उस समय कुमारी सिमोल्टन-नामक एक अमेरिकन महिला ने वहीं जाकर आपसे भेंट की। उस समय अध्यापक महाशय को अपने उद्योग में बहुत कुछ सफलता हो गई थी। वह मजे में बंदरों के साथ बातचीत कर सकते थे। पीछे से तो आप बंदरों की बोली बोलने और समझने में पूर्ण पंडित हो गए; और एक बहुत बड़ी पुस्तक भी लिख डाली।

गार्नर साहब का पूरा नाम है डॉक्टर रिचर्ड एल्० गार्नर। जब से आपको बंदरों की भाषा सीखने की इच्छा हुई, तब से आप अपना सब काम छोड़कर उसी के पीछे पड़ गए। इसीलिये आफ्रिका के जंगलों में वर्षों घूमते रहे, मनुष्यों का संपर्क छोड़कर आप बंदरों के साथी बने। गोरीला और चिंपैंजी नाम के बंदर बड़े भयानक होते हैं। उनके साथ रहना अपने प्राणों को संकट में डालना है। फिर भी आप अपने काम में लगे ही रहे। उद्योग और अध्यवसाय से क्या नहीं होता। अंत में आपका मनोरथ पूर्ण हुआ, और आप बंदरों की भाषा सीख गए। अपने काम में सफलता प्राप्त कर लेने के बाद आप परलोकांतरित हुए।

जब से आपको बंदरों की भाषा सीखने की इच्छा हुई, तब से आप उनकी आवाज पर ध्यान देने लगे। वे लोग आपस में जैसी आवाज करते थे, उसका ठीक-ठीक उच्चारण आप लिख लेते थे। फिर आप दूसरे बंदरों के पास जाकर उन्हीं शब्दों का उच्चारण किया करते थे। उसे सुनकर बंदर जो कुछ करते थे, उसे भी आप लिख लेते थे। इस तरह करते-करते आपने यह निश्चय किया कि बंदरों की भी भाषा है, और वे एक दूसरे की बातें समझ भी सकते हैं।

इसके बाद आपने दो बंदरों को अलग-अलग कमरों में बंद कर दिया। फिर आपने एक बंदर की आवाज को ग्रामोफ़ोन के रिकार्ड में भर लिया। तब आप दूसरे बंदर के कमरे में गए। वहाँ आपने ग्रामोफ़ोन पर उसी रिकार्ड को लगा दिया। उसे सुनकर वह बंदर अस्थिर हो उठा, और चारो तरफ़ अपने साथी को खोजने लगा। फिर इस बंदर की आवाज भरकर आप पहले बंदर के पास ले गए। उसे सुनकर वह और भी अधिक बोलने लगा। चोंगे में हाथ डालकर अपने साथी को ढूँढ़ने भी लगा।

जब कोई बंदर किसी दूसरे बंदर को युद्ध के लिये ललकारता है, तब वह एक विशेष प्रकार की आवाज करता है। गार्नर साहब ने उसको भी भरकर एक दूसरे बंदर को सुनाया। ललकार सुनते ही वह बंदर क्रुद्ध हो उठा, और वह भी वैसा ही शब्द करने तथा अपने प्रतिद्वंद्वी को ढूँढ़ने लगा।

इस प्रकार एक शब्द से सब बंदरों को एक ही प्रकार का काम करते देखकर गार्नर साहब ने उस शब्द का अर्थ ढूँढ़ निकाला। इसी उपाय से उन्होंने बंदरों की भाषा के वाक्य और उसके अर्थ निश्चित किए।

डॉक्टर गार्नर ने जिस तरह बंदरों की भाषा सीखी, उसी तरह उन्होंने बंदरों को मनुष्यों की भाषा सिखलाने का भी प्रयत्न किया। उनका एक पाला हुआ बंदर था। उसका नाम था मोजेज। उसने अँगरेजी का 'मामा', जर्मन का 'वी' और फ्रेंच का 'फ्य' उच्चारण करना सीख लिया था। फ्रेंच-भाषा में 'फ्य' आग को कहते हैं। गार्नर साहब उस बंदर को आग दिखा-दिखाकर बार-बार 'फ्य' कहा करते थे। इसका फल यह हुआ कि मोजेज जब कभी आग देखता, तब 'फ्य' कहकर चिल्ला उठता।

बंदरों की भाषा सीख लेने पर गार्नर साहब उनसे बराबर बातें किया करते थे। एक बार आप एक जंतुशाला में चिंपैंजी नाम के बंदरों के कठघरे में गए। सब बंदर सो रहे थे। आपने जाकर उनकी भाषा में कहा—ऊः ऊः। सब एकदम जाग पड़े, और आकर गार्नर साहब को उत्तर देने लगे। एक दूसरी जाति के प्राणी से अपनी जाति की भाषा सुनकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। ऐसी घटनाएँ कई बार हुई हैं।

सितंबर, १६२०

१५—ग्रहों पर जीवधारियों के होने का अनुमान

हम सब लोग पृथ्वी पर रहते हैं। पृथ्वी की गणना ग्रहों में है। पृथ्वी पर जब अनेक प्रकार के प्राणी रहते हैं, और वनस्पति उगते हैं, तब और-और ग्रहों पर भी उनका होना संभव है। दूरबीन और स्पेक्ट्रास्कोप-नामक यंत्रों के सहारे विद्वानों ने इस बात का अनुमान किया है कि मंगल और शुक्र आदि ग्रहों पर भी प्राणी रह सकते हैं। दूरबीन एक ऐसा यंत्र है, जिसके द्वारा दूर-दूर के पदार्थ दिखलाई देते हैं। फ्रांस की राजधानी पेरिस में, कुछ दिन हुए, एक बहुत बड़ी दूरबीन बनी है। उससे देखने से चंद्रमा केवल २० मील की दूरी पर आ गया-सा दिखाई देता है। दूरबीन के नाम ही से यह सूचित होता है कि उससे दूर की वस्तु दिखाई पड़ती है; परंतु स्पेक्ट्रास्कोप का उपयोग उसके नाम से नहीं सूचित होता। इस यंत्र के द्वारा आकाश से आए हुए प्रकाश की किरणों की परीक्षा करके इस बात का पता लगाया जाता है कि जिन ग्रहों से प्रकाश की किरणें आई हैं, वे किन-किन पदार्थों से बने हुए हैं। ग्रहों को दूरबीन से देखकर और स्पेक्ट्रास्कोप से उनकी परीक्षा करके विद्वानों ने यह अनुमान किया है कि ग्रहों पर बस्ती का होना संभव है।

प्राणियों के जीवन के लिये जल, वायु और उष्णता की अपेक्षा होती है। उनके बिना कोई प्राणी जीता नहीं रह सकता।

मिट्टी, लोहा, कोयला और चूना इत्यादि पदार्थों का होना भी आवश्यक है, क्योंकि जितने प्राणी हैं, उनके शरीर में प्रायः ये ही पदार्थ पाए जाते हैं। स्पेक्ट्रास्कोप से यह जाना गया है कि ग्रहों में ये सब पदार्थ हैं; इसलिये उनमें जीवधारी रह सकते हैं। ग्रहों में जल, वायु और उष्णता का होना भी विद्वानों ने सिद्ध किया है। इस बात को कुछ अधिक विस्तार से हम लिखते हैं। जितने ग्रह हैं, सबमें दो प्रकार की उष्णता रहती है। एक तो स्वयं उनकी उष्णता और दूसरी वह जो उन्हें सूर्य से मिलती है। पहले जैसे पृथ्वी जलते हुए लोहे के गोले के समान उष्ण थी, वैसे ही और-और ग्रह भी थे। पृथ्वी का ऊपरी भाग धीरे-धीरे शीतल हो जाने से प्राणियों के रहने योग्य हो गया है; परंतु बृहस्पति, शनैश्चर, यूरेनस और नपच्यून अभी तक अत्यंत उष्ण बने हुए हैं। इसलिये उन पर जीवधारियों का होना कम संभव जान पड़ता है। शेष ग्रहों में से शुक्र, मंगल और बुध का ऊपरी भाग शीतल हो गया है। उनकी दशा वैसी ही है जैसी पृथ्वी की है। इसलिये उन पर जीवधारी और वनस्पति रह सकते हैं। सूर्य से जो उष्णता इन तीन ग्रहों को मिलती है, उसका परिमाण न्यारा-न्यारा है। पृथ्वी की अपेक्षा मंगल को आधी उष्णता मिलती है; परंतु शुक्र को उसकी दूनी और बुध को उसकी सतगुनी मिलती है। उष्णता के संबंध में एक बात और विचार करने योग्य है। वह यह कि जहाँ जितनी धुआँ अधिक

होती है, वहाँ उतनी ही कम उष्णता रहती है। मंगल में पृथ्वी की अपेक्षा वायु कम है; उसमें सूर्य की उष्णता भी कम है; इसलिये उसमें अधिक वायु की आवश्यकता नहीं। शुक्र में भी वायु होने का पता लगा है; परंतु उसका परिमाण नहीं जाना गया। सूर्य के बहुत निकट होने के कारण बुध दूरबीन से अच्छी तरह देखा नहीं जा सकता। इसलिये यह नहीं जाना गया कि उसमें वायु है, अथवा नहीं। तथापि ज्योतिष-विद्या के जाननेवालों ने कई कारणों से यह अनुमान किया है कि उसमें भी वायु अवश्य होगी।

उष्णता और वायु के सिवा प्राणियों के लिये जल की भी आवश्यकता होती है। दूरबीन से देखने से यह जाना जाता है कि शुक्र और मंगल में पानी है, क्योंकि इन ग्रहों में बर्फ़ के पहाड़-के-पहाड़ गलते हुए देखे गए हैं। जहाँ बर्फ़ है, वहाँ पानी होना ही चाहिए। इसका पता ठीक-ठीक नहीं लगा कि बुध में पानी है अथवा नहीं; परतु जब उसमें वायु का होना अनुमान किया गया है, तब पानी होने का भी अनुमान हो सकता है।

इन बातों से सूचित होता है कि यदि बुध जीवधारियों के रहने योग्य नहीं, तो शुक्र और मंगल अवश्य हैं। अब इस बात का निश्चय करना कठिन है कि इन दो ग्रहों में किस प्रकार के प्राणी और किस प्रकार के वनस्पति होंगे। जैसा देश होता है, उसमें वैसे ही मनुष्य, पशु, पक्षी और वनस्पति

होते हैं। जिन देशों में सर्दी अधिक पड़ती है, उसमें ऐसे ही जीव उत्पन्न होते हैं, जो सर्दी सहन कर सकें। जो देश उष्ण हैं, उनमें ईश्वर उनके जल-वायु के अनुकूल प्राणी उत्पन्न करता है। इसलिये मंगल और शुक्र पर जो जीव और जो वनस्पति होंगे, वे उनके जल-वायु के अनुकूल होंगे। इस विषय में एक बात ध्यान में रखने योग्य यह है कि प्राणियों की छुटाई-बड़ाई ग्रहों की छुटाई बड़ाई के अनुसार होनी चाहिए। जो ग्रह जितना बड़ा होगा, उसमें उतनी ही अधिक आकर्षण शक्ति होगी, आकर्षण शक्ति उसे कहते हैं, जिसके द्वारा जड़ पदार्थ ग्रहों की ओर खिंच जाते हैं। पृथ्वी पर जो पदार्थ गिरते हुए दिखाई देते हैं, वे पृथ्वी की आकर्षण शक्ति से खिंच आते हैं। इसी खिंच आने को गिरना कहते हैं। इस नियम के कारण बड़े ग्रहों में छोटे जीव नहीं रह सकते, क्योंकि उनमें शक्ति कम होने के कारण वे चल-फिर न सकेंगे, ग्रहों की आकर्षण-शक्ति से खिंचे हुए जहाँ-के-तहाँ ही पड़े रहेंगे। इसीलिये विद्वानों ने यह निश्चय किया है कि बड़े ग्रहों में बड़े और छोटे ग्रहों में छोटे जीवों की बस्ती होगी।

ग्रहों की बस्ती के विषय में अभी इतनी ही बातें जानी गई हैं। आशा है, विद्या और विज्ञान के बल से विद्वान् लोग किसी दिन मंगल और शुक्र आदि के निवासियों के रूप-रंग और आकार इत्यादि का भी पता लगा लेंगे।

जनवरी, १९०३

१६—मंगल-ग्रह तक तार

पृथ्वी के पुत्र का नाम मंगल है। वह पृथ्वी ही से उत्पन्न है। कहते हैं, पृथ्वी और मंगल का पिंड पहले एक ही था। किसी कारण से वह पृथ्वी से टूटकर अलग हो गया और एक नया ग्रह बन गया। छोटा होने के कारण जल्दी ही वह प्राणियों के रहने योग्य हो गया। पृथ्वी पर प्राणियों की बस्ती होने के पहले ही मंगल में हुई होगी, और वहाँ के मनुष्य यहाँवालों की अपेक्षा अधिक सभ्य, समझदार और शिक्षित होंगे। विज्ञानियों का अनुमान ऐसा ही है।

इटली के मारकोनी साहब का नाम पाठकों ने सुना होगा। उन्होंने बेतार की तारबर्क़ी निकाली है। अब उसका प्रचार इस देश में भी हो गया है। उन्होंने प्रतिज्ञा की है कि हमारी बेतार की तारबर्क़ी किसी समय पृथ्वी से मंगल तक बराबर जारी हो जायगी! इसे हँसी न समझिए। मारकोनी साहब सचमुच ही इस बात का दावा करते हैं कि मंगल तक उनका तार कभी-न-कभी ज़रूर लग जायगा। ईथर-नामक पदार्थ, जो हवा से भी पतला है, सारे विश्व में व्याप्त है। उसी की करामात से बेतार की तारबर्क़ी चलती है। हज़ारों कोस दूर देशों में, समुद्र पार करके, इस तार की ख़बरें ज़रा ही देर में पहुँच जाती हैं। नदी, समुद्र, पहाड़ पहाड़ी, जंगल, बियाबान, नगर, क़सबे इत्यादि पार करने में इन ख़बरों को ज़रा भी

बाधा नहीं पहुँचती। दो-तीन हजार मील की दूरी, बात कहते, ये खबरें तय कर डालती हैं। अब ऊँचे-ऊँचे पहाड़ लाँघने में इनको कोई कठिनता नहीं मालूम होती, तब साफ़-सुथरे आकाश-मार्ग को तय करने में क्यों मालूम होने लगी? हाँ, मामला दूर का है। इसलिये तार भेजने की बिजली की ताक़त खूब अधिक दरकार होगी। वह अमेरिका के नियागरा-प्रपात से प्राप्त की जा सकती है। बस, फिर ५,००,००,००० मील दूर, आकाश में, २०० शब्द फ़ी मिनट के हिसाब से खबरें भेजी जाने में कुछ भी देरी न लगेगी!

अजी साहब, आपकी खबरें मंगल-ग्रहवाले पढ़ेंगे किस तरह? और वहाँ कोई रहता भी है? इन बातों का पता लगाना औरों का काम है, मारकोनी साहब का नहीं। वह सिर्फ़ खबर भेजने का बंदोबस्त कर देंगे। मंगल में आदमियों को खोजकर उन्हें पृथ्वी की खबरों का जवाब देने लायक़ बनाना औरों का काम है। यह काम भी लोग धड़ाके से कर रहे हैं।

मंगल के जो छाया-चित्र लिए गए हैं, उनसे प्रकट होता है कि इस ग्रह में कितनी ही नहरें हैं। वे खूब लंबी, चौड़ी और सीधी हैं। वे प्राकृतिक नहीं हैं, आप-ही-आप नहीं बन गईं। उनके आकार को देखने ही से मालूम होता है कि वे आदमियों की बनाई हुई हैं, और बहुत होशियार आदमियों ने उन्हें बनाया होगा। हम लोगों से तो वे जरूर ही

अधिक होशियार होंगे। कला-कौशल में वे हमसे बहुत बढ़े-चढ़े होंगे। ऐसे सभ्य, शिक्षित और कला-कुशल आदमी हमारी खबरें न पढ़ सकेंगे! हम लोग अँगरेजी में खबरें भेजेंगे। हमसे सैकड़ोंगुना अधिक विद्वान् और विज्ञान-निधान होने के कारण वे धीरे-धीरे, वहीं बैठे-बैठे, हमारी अँगरेजी सीख लेंगे। और, फिर, अपनी भाषा हमें सिखला देंगे। अँगरेजी की मदद से वे यह काम बहुत आसानी से कर सकेंगे।

जितनी आकर्षण-शक्ति पृथ्वी में है, उसकी एक ही तिहाई मंगल में है। इससे यहाँ के विज्ञानियों ने हिसाब लगाया है कि मंगल के आदमी कुंभकर्ण के भी चचा होंगे। वे बहुत ही भीमकाय और विशाल बली होंगे। मान लीजिए, पृथ्वी के आदमियों की अपेक्षा मंगलवाले तिगुने बड़े हैं। अब यदि वे पृथ्वी पर किसी तरह आ जायँ, तो उनका वजन यहाँ के आदमियों की अपेक्षा बीसगुना अधिक हो! एक साहब की राय है कि मंगली मनुष्यों की छाती बहुत चौड़ी होगी। श्वासोच्छ्वास में मनों हवा पाने और बाहर निकालने के लिये उनके फेफड़े मछलियों के फेफड़ों के सदृश बड़े-बड़े होंगे। उनकी नाक लंबी और हाथ नीचे पैरों तक लंबे होंगे।

दो-एक आदमियों ने अध्यात्म-विद्या के बल से प्राणों को आध्यात्मिक नींद में करके उनसे कहा—"पृथ्वी पर नहीं; मंगल पर हो। बतलाओ तो सही, तुम क्या देख रहे हो?"

उन्होंने कहा—"हम विलक्षण प्रकार के भीम भूधराकार प्राणी देख रहे हैं। उनके पंख हैं। उनकी गर्दन बहुत लंबी है। वे मजे में जहाँ चाहते हैं, उड़ते फिरते हैं। वे भी आदमी ही हैं। फ़र्क इतना ही है कि डील-डौल में वे बहुत बड़े हैं।"

बिजली की काफ़ी शक्ति मिलने पर मंगल ही तक नहीं, किंतु उससे भी सौगुना दूर खबरें भेजी जा सकेंगी। किसी दिन नेपच्यून नाम के अत्यंत दूरवर्ती ग्रह में भी तार-घर खुल जायगा, और उसका लगाव पृथ्वी से हो जायगा। वही क्यों, कोई भी ग्रह ऐसा न रहेगा, जिस पर तार-घर न हो। पर पहले मंगल ही तक खबर भेजने की कोशिश की जायगी; क्योंकि वहाँवाले विज्ञान में बहुत कुशल जान पड़ते हैं, और जल्द अँगरेजी सीखकर हमारी खबरों को पढ़ लेंगे, और अपनी भाषा भी हमें जल्द सिखला देंगे। जिस दिन पहले-पहल खबर मंगल में पहुँचेगी, उस दिन शायद हम पर मंगलवाले बेतरह बिगड़ उठें, और हमें खूब झाड़-फटकार बतलावें। वे शायद कह उठें—"अरे मूर्खो, तुम्हें हम लोग हजारों वर्ष से पुकार रहे हैं, पर तुम अब जागे हो!"

{ जुलाई, १९०९

१७—पाताल-प्रविष्ट पांपिआई-नगर

किसी समय विसूवियस पहाड़ के पास, इटली में, एक नगर पांपियाई नाम का था। रोम के बड़े-बड़े आदमी इस रमणीय नगर में अपने जीवन का शेषांश व्यतीत करते थे। हरएक मकान चित्रकारियों से विभूषित था। इंद्र-धनुष के समान तरह-तरह के रंगों से रँगी हुई दुकानें नगर की शोभा को और भी बढ़ा रही थीं। हर सड़क के छोर पर छोटे-छोटे तालाब थे, जिनके किनारे भगवान् मरीचिमाली के उत्ताप को निवारण करने के लिये यदि कोई पथिक थोड़ी देर के लिये बैठ जाता था, तो उसके आनंद का पार न रहता था। जब लोग रंग-बिरंगे कपड़े पहने हुए किसी स्थान पर जमा होते थे, तब बड़ी चहल-पहल दिखाई देती थी।

कोई-कोई संगमरमर की चौकियों पर, जिन पर धूप से बचने के लिये पर्दे टँगे हुए थे, बैठे दिखाई पड़ते थे। उनके सामने सुसज्जित मेजों पर नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजन रक्खे जाया करते थे। गुलदस्तों से मेजें सजी रहती थीं। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि वहाँ का छोटे-से-छोटा भी मकान सुसज्जित महलों का मान भंग करनेवाला था। वहाँ का झोपड़ा भी महल नहीं स्वर्ग था। यहाँ पर हम केवल एक ही मकान का थोड़ा-सा हाल लिखते हैं। उससे ज्ञात हो जायगा कि पांपियाई उस समय उन्नति के कितने ऊँचे शिखर पर

आरूढ़ था। पांपियाई में घुसते ही एक मकान दृष्टिगोचर होता था। उसकी बाहरी दालान रमणीय खंभों की पंक्ति पर सधी हुई थी। दालान के भीतर घुसने पर एक बड़ा लंबा-चौड़ा कमरा मिलता था। वह एक प्रकार का कोश-गृह था। उसमें लोग अपना-अपना बहुमूल्य सामान जमा करते थे। वह सामान लोहे और ताँबे के संदूक़ों में रक्खा रहता था। सिपाही चारो तरफ़ पहरा दिया करते थे। रोमन देवताओं की पूजा भी इसी में हुआ करती थी।

इस कमरे के बराबर एक और भी कमरा था। उसमें मेह-मान ठहराए जाते थे। उसी में कचहरी थी। इससे भी बढ़-कर एक गोल कमरा था। उसके फ़र्श में संगमरमर और संग-मूसा की पच्चीकारी का काम था। दीवारों पर उत्तमोत्तम चित्र अंकित थे। इस कमरे में पुराने इतिहास और राज्य-संबंधी काग़ज़ात रहते थे। यह कमरा बीच से लकड़ी के पर्दों से दो भागों में बँटा हुआ था। दूसरे भाग में मेहमान लोग भोजन करते थे।

इसके बाद देखनेवाला यदि दक्षिण की तरफ़ मुड़ता, तो एक और बहुत बड़ा सजा हुआ कमरा मिलता। उसमें सोने का प्रबंध था। कोचें बिछी हुई थीं। उन पर तीन-तीन फ़ीट ऊँचे रेशमी गद्दे पड़े रहते थे। इसी कमरे में, दीवार के किनारे-किनारे, आलमारियाँ लगी थीं। उनमें बहुमूल्य रत्न और प्राचीन काल की अन्यान्य आश्चर्य-जनक चीज़ें रक्खी रहती थीं।

इस मकान के चारो तरफ़ एक बड़ा ही मनोहारी बग़ीचा था। जगह-जगह पर फ़व्वारे अपने सलिल-सीकर बरसाते थे। उनकी बूँदें बिल्लौर के समान चमकती हुई भूमि पर गिर-गिरकर बड़ा ही मधुर शब्द करती थीं। फ़व्वारों के किनारे-किनारे माधवी-लताएँ कलियों से परिपूर्ण शरद्-ऋतु की चाँदनी का आनंद देती थीं। फ़व्वारों के कारण दूर-दूर तक की वायु शीतल रहती थी। जहाँ-तहाँ सघन वृक्षों की कुंजें भी थीं।

आगे चलकर गर्मियों में रहने के लिये एक मकान था, जिसे हम मदन-विलास कह सकते हैं। पाठक, कृपा करके इसके भी दर्शन कर लीजिए। इसकी भी सजावट अपूर्व थी। इसमें जो मेज़ें थीं, वे देवदारु की सुगंधित लकड़ी की थीं। उन पर चाँदी-सोने के तारों से तारकशी का काम था। सोने-चाँदी की रत्न-जटित कुर्सियाँ भी थीं। उन पर रेशमी झालरदार गद्दियाँ पड़ी हुई थीं। कभी-कभी मेहमान लोग इसमें भी भोजन करते थे। भोजनोपरांत वे चाँदी के बर्तनों में हाथ धोते थे। इसके बाद बहुमूल्य शराब, सोने के प्यालों में, उड़ती थी। पानीदार माली प्रसून-स्तबक मेहमानों को देता था, और सुमन-वर्षा होती थी। अंत में नृत्य आरंभ होता था। इसी गायन-वादन के मध्य में इत्र-पान होता था, और गुलाब-जल की वृष्टि होती थी। ये सब बातें अपनी हैसियत के मुताबिक़ सभी के यहाँ होती थीं। त्योहार पर तो सभी ऐसा करते थे।

एक दिन कोई त्योहार मनाया जा रहा था। वृद्ध, युवा, बालक, स्त्रियाँ, सभी आमोद-प्रमोद में मग्न थे। इतने में अकस्मात् विसूवियस से धुआँ निकलता दिखाई दिया। शनैः-शनैः धुएँ का ग़ुबार बढ़ता गया। यहाँ तक कि तीन घंटे दिन रहे ही चारो ओर अंधकार छा गया। सावन-भादों की काली रात-सी हो गई। हाथ को हाथ न सूझ पड़ने लगा। लोग हाहाकार मचाने और त्राहि-त्राहि करने लगे। जान पड़ा कि प्रलय आ गया। जहाँ पहले धुआँ निकलना शुरू हुआ था, वहाँ से चिनगारियाँ निकलने लगीं। लोग भागने लगे। परंतु भागकर जाते भी तो कहाँ? ऐसे समय में निकल भागना नितांत असंभव था। अँधेरा ऐसा घनघोर था कि भाई बहन से, स्त्री पति से, मा बच्चों से बिछुड़ गई। हवा बड़े वेग से चलने लगी। भूकंप हुआ। मकान धड़ाधड़ गिरने लगे। समुद्र में चालिस-चालिस गज ऊँची लहरें उठने लगीं। वायु भी गर्म मालूम होने लगी, और धुआँ इतना भर गया कि लोगों का दम घुटने लगा। इस महाघोर संकट से बचने के लिये लोग ईश्वर से प्रार्थना करने लगे। पर सब व्यर्थ हुआ।

कुछ देर में पत्थरों की वर्षा होने लगी, और जैसे भादों में गंगाजी उमड़ चलती हैं, वैसे ही गरम पानी की तरह पिघली हुई चीज़ें ज्वालामुखी पर्वत से बह निकलीं। उन्होंने पांपियाई का सर्वनाश आरंभ कर दिया। मेहमान भोजन-गृह में, स्त्री

पति के साथ, सिपाही अपने पहरे पर, क़ैदी क़ैदखाने में, बच्चे पालने में, दूकानदार तराज़ू हाथ में लिए ही रह गए। जो मनुष्य जिस दशा में था, वह उसी दशा में रह गया।

मुद्दत बाद, शांति होने पर, अन्य नगर-निवासियों ने वहाँ आकर देखा, तो सिवा राख के ढेर के और कुछ न पाया। वह राख का ढेर ख़ाली ढेर न था; उसके नीचे हज़ारों मनुष्य अपनी जीवन-यात्रा पूरी करके सदैव के लिये सो गए थे।

हाय, किस-किसके लिये कोई अश्रु-पात करे! यह दुर्घटना २३ अगस्त, ७६ ईस्वी की है। १६४५ वर्ष बाद जो यह जगह खोदी गई, तो जो वस्तु जहाँ थी, वहीं मिली।

यह प्रायः सारा-का-सारा शहर पृथ्वी के पेट से खोद निकाला गया है। अब भी कभी-कभी इसमें यत्र-तत्र खुदाई होती है, और अजूबा-अजूबा चीज़ें निकलती हैं। पांपियाई मानो दो हज़ार वर्ष के पुराने इतिहास का चित्र हो रहा है। दूर-दूर से दर्शक उसे देखने जाते हैं।

{ अक्टोबर, १९११

१८—अंध-लिपि

मनुष्य को परमेश्वर ने जितनी इंद्रियाँ दी हैं, आँख सबमें प्रधान है। आँख न रहने से जीवन भारभूत हो जाता है। बिना आँखों के मनुष्य प्रायः किसी काम का नहीं रहता।

एक इंद्रिय के न रहने से, अथवा उसके निरुपयोगी हो जाने से, अन्य इंद्रियों में से एकआध इंद्रिय अधिक चेतनता दिखाने और अपने काम को विशेष योग्यता से करने लगती है। इसी से जो मनुष्य चक्षुरिंद्रिय-हीन हो जाता है, उसकी स्पर्श-शक्ति प्रबल हो उठती है। स्पर्श-ज्ञान के प्राबल्य की सहायता से अंधा आदमी स्पर्श से ही दृष्टि का भी कुछ-कुछ काम कर लेता है। तथापि अंधता के कारण उसका जीवन फिर भी कंटकमय ही रहता है। अतएव निराश, दीन और दुखी अंधों को पढ़ाने-लिखाने की जिसने युक्ति निकाली, वह धन्य है।

योरप और अमेरिका में अंधों के अनेक स्कूल हैं, और हज़ारों अंधे पढ़-लिखकर कितने ही उपयोगी काम-धंधे करने लगे हैं। कोई शिक्षक है, कोई लेखक है। कोई गाने-बजाने का व्यवसाय करता है। कोई कुछ, कोई कुछ। जो लोग इस तरह का कोई काम नहीं करते, वे भी पढ़ने-लिखने में लगे रहते हैं। अतएव उनका मनोरंजन हुआ करता है, और जीवन भारभूत नहीं मालूम होता।

बड़ी खुशी की बात है, अब इस देश के कलकत्ते और मदरास आदि दो-चार प्रसिद्ध-प्रसिद्ध नगरों में भी अंधों को शिक्षा देने का प्रबंध हो गया है। वहाँ पाठशालाएँ खुल गई हैं, जिनमें लिखने-पढ़ने के सिवा कला-कौशल आदि की भी शिक्षा अंधों को दी जाती है।

अंधों को पढ़ाने के लिये पहले जिस तरह के ऊँचे उठे हुए अँगरेज़ी अक्षर काम में लाए जाते थे, उनसे अंधों की शिक्षा में बहुत बाधा पहुँचती थी। कई तरह के 'टाइप' ईजाद किए गए। पर सबमें, और दोषों के सिवा, सबसे बड़ा दोष यह था कि अंधे उनको पढ़ तो लेते थे, पर लिख न सकते थे। लोगों का पहले यह ख़याल था कि बहरों को जैसे बहुत ज़ोर से बोलने पर ही शब्द सुनाई पड़ता है, वैसे ही अंधों को बड़े-ही-बड़े अक्षरों का स्पर्श-ज्ञान हो सकता है। अक्षर या टाइप जितने ही बड़े होंगे, उतना ही अधिक सुबीता अंधों को होगा, परंतु यह उनकी भूल थी। दृष्टि-हीन हो जाने से अंधों का स्पर्श-ज्ञान इतना तेज़ हो जाता है कि वे उठे हुए बहुत छोटे-छोटे टाइप भी उँगली से छूकर पहचान सकते हैं। यही नहीं, किंतु रेशमी रूमाल के भीतर उँगलियों को रखकर भी वे अक्षर पहचान सकते हैं।

अंधों को पढ़ाने में जिस तरह के टाइपों या अक्षरों से आजकल काम लिया जाता है, उनका नाम ब्रेली-टाइप है। फ्रांस में पेरिस-नगर के निवासी लुई ब्रेली नाम के एक अंधे ने, १८३५ ई० में पहलेपहल इनका प्रचार किया। उसकी निकाली हुई वर्ण-माला इतनी सरल है कि बहुत ही थोड़ी मेहनत से उसे अंधे सीख सकते हैं। उसे वे पढ़ भी सकते हैं और लिख भी सकते हैं। सिर्फ़ दो ही चार हफ़्ते की मेहनत से अंधे इसे सीख जाते हैं, और इसमें लिखी हुई किताबें वे

उतनी ही आसानी और शीघ्रता से पढ़ लेते हैं, जितनी शीघ्रता से चक्षुष्मान् आदमी पढ़ सकते हैं।

अंधों की इस अक्षर-मालिका को वर्ण-माला नहीं, किंतु बिंदुमाला कहना चाहिए। यह माला ६३ प्रकार के बिंदुओं के मेल से बनती है। तीन-तीन बिंदुओं—सिफ़रों—की दो सतरें बनाई जाती हैं। वे सतरें एक के आगे दूसरी, बराबर, रक्खी जाती हैं। प्रत्येक सतर के बिंदु एक दूसरे के नीचे रक्खे जाते हैं। इन्हीं बिंदुओं में से कुछ बिंदु काग़ज़ के ऊपर ज़रा ऊँचे उठा दिए जाते हैं। इन उठे हुए बिंदुओं का क्रम जुदा-जुदा होता है, और प्रत्येक बिंदु-समूह से एक वर्ण, अथवा बहुत अधिक काम में आनेवाले एक शब्द, का ज्ञान होता है। कोई-कोई बिंदु-समूह ऐसा है, जिससे एक वर्ण का भी बोध होता है और एक शब्द का भी। इस प्रकार दो अर्थों के देने-वाले बिंदु-समूहों से जहाँ जैसा अर्थ मुहावरे के अनुसार, अपेक्षित होता है, वहाँ वैसा ही निकाल लिया जाता है। कहने की ज़रूरत नहीं, यह बिंदु-वर्णावली अँगरेज़ी-वर्णों की ज्ञापक है। इस बिंदु-मालिका में जितने बिंदु बड़े-बड़े हैं, वे सब काग़ज़ पर उभड़े हुए हैं। उन पर उँगली रखते ही अंधे जान जाते हैं कि ये किस अक्षर या शब्द के ज्ञापक हैं। प्रत्येक अक्षर के ज्ञापक इसी बिंदु-मालिका को पास-पास रखने से शब्द बन जाते हैं। प्रत्येक वर्ण के बीच कुछ कम, और प्रत्येक शब्द के बीच कुछ अधिक, जगह छोड़ दी जाती

है, जिसमें एक शब्द दूसरे से मिल न जाय। वैज्ञानिक विषयों की इबारत लिखने में कुछ कठिनता होती है, क्योंकि टेढ़ी-मेढ़ी संज्ञाएँ, रेखाएँ और शक्लें इस बिंदु-मालिका के द्वारा नहीं बनाई जा सकतीं। परंतु अंधों के लिये विज्ञानवेत्ता या शास्त्री होने की अभी वैसी जरूरत भी नहीं है। अभी तो उनके लिये ऐसी किताबों की जरूरत है, जिनसे उनका मनोरंजन हो, और जिन्हें पढ़कर वे अपना समय अच्छी तरह काट सकें, और साथ-ही-साथ अपने ज्ञान की भी कुछ वृद्धि कर सकें। इस बिंदु-वर्णावली में इबारत लिखने लिए के एक खास क़िस्म का ढाँचा दरकार होता है। उसी पर काग़ज लगा दिया जाता है। अंधे उसे बड़ी सफ़ाई से लिख लेते हैं। कितनी ही पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ इस वर्णावली में किताबें लिख-लिखकर अंधों को नज़र करती हैं।

ब्रेली की बनाई हुई इस नई बिंदु-माला का प्रचार इँगलैंड में हुए अभी बहुत दिन नहीं हुए। १८७२ ईस्वी में डॉक्टर आरमिटेज नाम के एक विद्वान् ने इसका पहलेपहल प्रचार किया। परंतु इसका अब इतना प्रचार हो गया है कि इसकी बदौलत आजकल हजारों अंधे वहाँ शिक्षा पा रहे हैं। अंधों के लिये कितने ही स्कूल खुल गए हैं। यही नहीं, किंतु एक पुस्तकालय भी है। उसे कुमारी पार्थी आरनल्ड-नामक एक जन्मांध स्त्री ने, कुमारी हाउडन-नामक एक अन्य स्त्री की सहायता से, स्थापित किया था। इसकी स्थापना हुए

लगभग २५ वर्ष हुए। अब यह लंदन के बेज़वाटर-नामक मुहल्ले में है। इस पुस्तकालय का वर्णन नारी अलेग्ज़ांडर नाम की एक स्त्री ने एक अँगरेज़ी सामयिक पुस्तक में, बड़ी ही मनोरंजक रीति से किया है। इस पुस्तकालय की सरपरस्त इँगलैंड के राजकुल की एक महिला महोदया हैं। इसमें जो पुस्तकें हैं, वे अंधों को पढ़ने के लिये दी जाती हैं।

अँगरेज़ी की जो पुस्तकें अंधों के लिये तैयार की जाती हैं, उन्हें पहले आँखवाले आदमी को अंधों की लिपि में नक़ल करना पड़ता है। इसके बाद उनकी जितनी कापियाँ दरकार होती हैं, उतनी अंधे कर लेते हैं। पहली कापी आँखवाले किसी आदमी को जरूर करनी पड़ती है। सुनते हैं, अंधों पर कृपा करके जो लोग इस तरह की पुस्तकें नक़ल करते हैं, उनको यह काम बुरा नहीं मालूम होता। वे इसे बड़े चाव से करते हैं। ज़रा अभ्यास-भर उनका हो जाना चाहिए। फिर अंधलिपि में पुस्तकें नक़ल करने में उनका जी नहीं ऊबता; उससे उलटा उनका मनोरंजन होता है।

अंध-लिपि में पुस्तकें नक़ल करने में जगह बहुत खर्च होती है। अँगरेज़ी के छोटे-छोटे पाँच-पाँच, छ-छ आने के जो उपन्यास बिकते हैं, उनकी नक़ल करने में एक-एक पुस्तक की आठ-आठ, दस-दस जिल्दें हो जाती हैं, और, जिल्दें भी छोटी नहीं — ११ इंच चौड़ी और १४ इंच लंबी। बाइबिल की जो नक़ल इस लिपि में की गई है, उसकी ३५ जिल्दें हुई हैं, गिबन

नाम के प्रसिद्ध इतिहासकार ने रोम का जो इतिहास अँगरेज़ी में लिखा है, वह ५० जिल्दों में समाप्त हुआ है। शेक्सपियर के नाटकों की कापी करने में भी इतनी ही जिल्दें लिखनी पड़ी हैं।

अंध-लिपि में लिखी गई एक जिल्द में ७५ पत्र रहते हैं, और उसकी क़ीमत कोई ११ रुपए होती है। ऐसी एक जिल्द की नक़ल करने के लिये कोई ८ रुपए लिखाई दी जाती है। यह काम अक्सर अंधे ही करते हैं, और ख़ासा रुपया कमाते हैं। बाक़ी के तीन रुपए काग़ज़ और जिल्द बँधाई वग़ैरह में ख़र्च होते हैं। इस प्रकार गिबन के रोमन-इतिहास की क़ीमत कोई साढ़े पाँच सौ रुपए होती है। ऐसी क़ीमती किताबें बेचारे अंधों को सहज में मिलना मुश्किल बात है। इसी मुश्किल को दूर करने के लिये हैम्सटेड में पुस्तकालय खोला गया था। इस पुस्तकालय की कुछ ही दिनों में इतनी तरक़्क़ी हुई कि इसके लिये एक बहुत बड़ी जगह दरकार हुई, और हैम्सटेड से उठाकर उसे वेज़वाटर-नामक स्थान को लाना पड़ा। इस समय कोई ८००० जिल्द पुस्तकें उसमें विद्यमान हैं। प्रतिवर्ष कम-से-कम ५०० नई जिल्दें उसमें रक्खी जाती हैं। ग्रेट-ब्रिटेन में सब मिलाकर ३८,००० अंधे हैं। उनमें से ५०० अंधे इस पुस्तकालय के मेंबर हैं। और, कोई एक सौ आदमी अंध-लिपि में पुस्तकें नक़ल करने में लगे हुए हैं। जो लोग इस पुस्तकालय के मेंबर होते हैं, उन्हें साल में २० रुपए के क़रीब चंदा देना

पड़ता है। हरएक मेंबर एक महीने में ८ जिल्द पुस्तकें पा सकता है। परंतु जो मेंबर बहुत ग़रीब हैं, उनके लिये चंदे का निर्ख ४ रुपए साल तक कम कर दिया गया है। ग़रीब अंधे ४ रुपए साल देने से महीने में ४ जिल्दें पढ़ने के लिये पाते हैं।

इँगलैंड में अंधों के लिये स्त्रियाँ अक्सर पुस्तकें नक़ल करती हैं। इसे वे पुण्य का काम समझती हैं। और, सचमुच ही यह पुण्य का काम है। धन-संपन्न विलायती स्त्रियों को हास-विलास, घूमने-फिरने और नाच-तमाशा देखने या दावत उड़ाने के सिवा और काम बहुधा कम रहता है। अतएव उनमें से जो परोपकार करना और दीन-दुखियों को सहायता देना चाहती हैं, वे अंधों की मदद करती हैं। वे अच्छी-अच्छी पुस्तकें नक़ल करके अंधों के पुस्तकालय में रखने के लिये भेजती हैं। प्रतिदिन सिर्फ़ दो घंटे इस काम में ख़र्च करने से एक साल में चार-पाँच जिल्दों की एक ख़ासी पुस्तक नक़ल हो जाती है। अंध-लिपि सीखने में न बहुत समय दरकार है और न बहुत मेहनत। कुछ ही हफ़्ते थोड़ा-थोड़ा अभ्यास करने से लोग इस लिपि में अच्छी तरह पुस्तकें नक़ल करने लगते हैं।

अंधों में शिक्षा की अब इतनी उन्नति हो गई है कि उन्होंने दो साप्ताहिक समाचार-पत्र निकालने शुरू किए हैं। एक का नाम है 'वीकली समरी', दूसरे का 'ब्रेली वीकली'। इनके संपादक, लेखक और समाचारदाता सब अंधे ही हैं। वर्तमान

राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक विषयों में इँगलैंड और अमेरिका के सामयिक पत्रों और पत्रिकाओं में जो उत्तमोत्तम लेख निकलते हैं, वे काटकर अलग एक पुस्तक में रक्खे जाते हैं। फिर वह पुस्तक अंध-लिपि में नक़ल की जाती है। और अंधों के पुस्तकालय में रक्खी जाती है। उसे अंधे बड़े चाव से पढ़ते हैं, और दुनिया में क्या हो रहा है, इसे अच्छी तरह जानकर अपने समाचार-पत्रों में अपने विचार प्रकट करते हैं, मुख्य-मुख्य बातों की आलोचना करते हैं, और कभी-कभी ऐसे-ऐसे लेख निकालते हैं, जिन्हें पढ़कर चक्षुष्मान् आदमियों को आश्चर्य होता है। अंधों ने इँगलैंड में एक क्लब भी स्थापित किया है। उसके मेंबर, अमेरिका और योरप के भिन्न-भिन्न देशों में रहनेवाले अंधों से 'एस्परांटो' भाषा में पत्र-व्यवहार करते हैं। अंधों पर कनाडा, आस्ट्रेलिया और अमेरिका की गवर्नमेंटों की विशेष कृपा है। इन देशों में अंधों के पत्र आदि डाक द्वारा मुफ़्त भेजे जाते हैं।

अंधों को संगीत से स्वभाव ही से कुछ अधिक प्रेम होता है। यह बात हमने इस देश के अंधों में भी देखी है। कई अंधों को हमने बहुत अच्छा तबला और सितार बजाते और गाते देखा है अंधों की इस स्वाभाविक शक्ति को उत्तेजना देने के लिये इँगलैंड में संगीत की भी पुस्तकें अंध-पुस्तकालय में रक्खी जाती हैं। इस कला में तो कोई-कोई अंधे आँखवाले आदमियों को भी मात करते हैं। विलायत में

कुमारी लूकस नाम की एक जन्मांध स्त्री है। वह संगीत में बहुत ही प्रवीण है। कुछ दिन हुए, एक पाठशाला में संगीताध्यापक की जगह खाली हुई। उसके लिये अनेक पुरुष उम्मेदवारों ने अर्जियाँ दीं। कौन उस जगह के लिये अधिक योग्य है, इसकी जाँच के लिये सबकी परीक्षा हुई। परीक्षा का फल यह हुआ कि कुमारी लूकस का नंबर सबसे ऊँचा आया। अतः वह जगह उसी को मिली।

अंधों का स्पर्श-ज्ञान जैसे बहुत बढ़ा-चढ़ा होता है, और उनके अंधेपन की थोड़ी-बहुत कसर उससे निकल जाती है, वैसे ही उनकी स्मरण-शक्ति भी विलक्षण होती है। विवेचना-शक्ति भी उनकी बहुत सूक्ष्म होती है। अँगरेज़ी में डिकिंस के उपन्यास प्रसिद्ध हैं। एक दफ़े एक अंधा इनमें से एक उपन्यास नक़ल कर रहा था। उसमें एक जगह लिखा था कि उपन्यास का नायक एक शहर में जून के महीने में शाम को अपनी मा से बातचीत कर रहा था। परंतु दो-तीन अध्यायों के बाद उसी के विषय में फिर उसे यह लिखा हुआ मिला कि एक हफ़्ते वहाँ रहकर जून की दूसरी तारीख़ को वह अन्यत्र चला गया। इसे पढ़कर अंधा फ़ौरन् बोल उठा कि यह तारीख़ ग़लत है। जून का एक हफ़्ता एक जगह व्यतीत करके उसी महीने की दूसरी तारीख़ को वह मनुष्य अन्यत्र नहीं पहुँच सकता! इस पुस्तक की सैकड़ों आवृत्तियाँ छप चुकी हैं। परंतु तब तक इसके प्रकाशकों में से किसी का भी ध्यान

इस ग़लती की तरफ़ नहीं गया । इस पुस्तक को लाखों आदमियों ने पढ़ा होगा । परंतु, संभव है, किसी पढ़नेवाले को भी यह ग़लती न खटकी हो । खटकी एक अंधे को !

अंधों को शिक्षा देना बड़े पुण्य का काम है । क्या कभी वह दिन भी आवेगा, जब इस देश के अंधों को भी पढ़ाने-लिखाने का यथेष्ट प्रबंध होगा ?

दिसंबर, १९०६

१९—भयंकर भूत-लीला

पढ़े-लिखे एतद्देशीय लोगों का भूत-प्रेतों के अस्तित्व पर बहुत कम विश्वास है । अँगरेज़ों की तो कुछ पूछिए ही नहीं । वे तो इस तरह की बातों को बिलकुल ही मिथ्या समझते हैं । परंतु एक असल अँगरेज़-बहादुर को—कम असल को भी नहीं—एक भूत ने बेतरह छकाया—उनका कलेजा दहला दिया । भूत ने उन पर एक प्रकार दया ही की, नहीं तो साहब बहादुर इँगलैंड लौटकर अपनी कहानी कहने को जीते ही न रहते । आप हिंदोस्तान की एक पलटन में कर्नल थे । कोई ऐसे-वैसे डरपोक आदमी भी न थे । आप पर बीती हुई बातें आपके एक मित्र ने आपकी तरफ़ से अँगरेज़ी की मासिक पुस्तक 'आकल्ट रिव्यू' में प्रकाशित की हैं । कर्नल

साहब ने उन बातों की सचाई की सर्टिफिकेट दी है। अब आपकी कहानी आप ही से सुनिए—

जिस अजीब घटना का मैं जिक्र करने जाता हूँ, उसे हुए कोई १६ वर्ष हुए। उस समय मैं हिंदोस्तान में था। मैं अपना नाम नहीं लेना चाहता, क्योंकि हिंदोस्तान में मुझे बहुत आदमी जानते हैं। नाम लेने से वे मुझे झट पहचान लेंगे। मैं एक दफ़े शिकार के लिये अपनी छावनी से दूर एक गाँव को गया। साथ सिर्फ़ दो आदमी थे—मेरा बेहरा और मेरा ख़ानसामा। प्रायः दिन-भर मैं घोड़े की पीठ पर रहा, शाम को मैं एक गाँव के पास आया। मैं ख़ाक में डूबा हुआ था। भूखा भी बहुत था। थका भी बहुत था। यह गाँव रास्ते से ज़रा हटकर था, और कपास के खेतों के बीच में बसा हुआ था।

एक क़ुदरती तालाब वहीं पर था। उसी के किनारे मैंने डेरा डाला। यह तालाब गाँव के पास ही था। तालाब के किनारे एक बहुत बड़ा छायादार बरगद का पेड़ था। उसी के नीचे मैंने रात काटने का विचार किया। जो कुछ सामग्री वहाँ मिल सकी, उसी से मेरे 'नेटिव' नौकरों ने मेरे लिये खाना बनाने की तैयारी की। वे लोग मेरे लिये खाना बनाने में लगे, और मैं यह देखने के लिये कि पास-पड़ोस में क्या है, एक दौरा लगाने निकला। चलते ही मुझे एक फ़क़ीर देख पड़ा। ये लोग हिंदोस्तान के सब हिस्सों में अधिकता से पाए

जाते हैं। इसकी जटाएँ बढ़ी हुई थीं। कमर में एक मैला लँगोटा था। सारे बदन में खाक लिपटी हुई थी। तालाब के दूसरे किनारे पर यह फ़क़ीर ध्यान में मग्न-सा था। इसी तरह के धार्मिक विक्षिप्तों का लोग बड़ा आदर करते हैं। उनसे डरते भी हैं; क्योंकि इन लोगों में अलौकिक शक्तियाँ होती हैं। ये अघटित घटनाएँ दिखलाने में बड़े पटु होते हैं। ये लोग अपने मन को यहाँ तक क़ाबू में कर लेते हैं कि जब चाहते हैं, समाधिस्थ हो जाते हैं। इस दशा में इनका शरीर तो जड़वत् पृथ्वी पर पड़ा रह जाता है, पर आत्मा इनकी आकाश में यथेष्ट भ्रमण किया करती है। जब मैं इस बुड्ढे फ़क़ीर के पास होकर निकला, तब इसने अपना ध्यान भंग करके मेरी तरफ़ नज़र उठाई। इसने मुझे सलाम किया, और मुझसे यह प्रार्थना की कि तुम इस तालाब का पानी न तो पीना और न छूना। पानी को हाथ भी न लगाना, नहीं तो कहीं कोई आफ़त न तुम पर आ जाय।

मैंने समझा कि इसमें इसका कुछ स्वार्थ है। यह भी मैंने अपने मन में कहा कि यह फ़क़ीर शायद मुझे कोई ऐसा ही वैसा आदमी समझता है। यह मुझे भला कहाँ गँवारा था। मैंने डपटकर कहा—"चुप रहो।" मैंने उससे यह भी कह दिया कि इस तालाब का पानी पीने से तुम क्या, कोई आदमी दुनिया-भर में मुझे मना नहीं कर सकता।

मेरे नौकर फ़क़ीर की बातें सुनकर बेतरह डर गए। डरते

और काँपते हुए मेरा बेहरा तालाब से पानी निकाल लाया। मैंने उससे खूब नहाया; खूब रगड़-रगड़कर बदन धोया। इससे मेरे बदन की थकावट और गर्मी बहुत कुछ दूर हो गई। मैं फिर तरोताजा हो गया। इसके बाद मैं तालाब की और उस फ़क़ीर की भी बात बिलकुल ही भूल गया। मगर कुछ देर में मैंने देखा कि बहुत-से देहाती, और मेरे दोनों नौकर भी, एक दूर के तालाब से पानी लाने दौड़े चले जा रहे हैं। तब मुझे फिर वे बातें याद आ गईं। मैंने इस बात की तहक़ीक़ात की कि ये लोग इस पास के तालाब से पानी न लेकर उतनी दूर दूसरे तालाब से क्यों पानी लाने जाते हैं। इस पर मुझे मालूम हुआ कि एक आदमी ने अपनी स्त्री को मार डाला था, और मारकर खुद भी इस तालाब में डूबकर आत्महत्या कर ली थी। इस घटना के कारण लोगों को यह दृढ़ विश्वास हो गया था कि जो कोई इस तालाब में स्नान करेगा या इसका पानी पियेगा, वह या तो उस मनुष्य के प्रेतात्मा से मारा ही जायगा, या यदि बच जायगा, तो उस पर कोई बहुत बड़ी विपत्ति आवेगी।

उस रात को दस बजे के बाद मैंने अपना सब असबाब अपने नौकरों के साथ अगले पड़ाव पर भेज दिया। उनके साथ कुछ कुली भी गए। उनको भेजकर मैं अपने बिस्तरे पर लेट रहा, और उसी बरगद के नीचे कंबल ओढ़कर तीन-चार घंटे सोया।

दो बजे मैं उठा। बंदूक मैंने हाथ में ली। घोड़े पर मैं सवार हो गया। साथ में मैंने एक पथ-दर्शक लिया। मेरा एक नौकर भी मेरे साथ हुआ। खेतों में होकर मैं सीधा ही रवाना हुआ। मैंने कहा, क्या डर है, क्यों दूर की राह जाकर व्यर्थ फेर खायँ। चलो, सीधे खेतों ही से निकल चलें।

इस वक्त रात के २ बजे होंगे। हवा खूब ठंडी-ठंडी चल रही थी, कुछ दूर तक हम लोग मजे में गए और तेजी से गए। मैं घोड़े पर था। मेरे दोनों हमराही मेरे अगल-बगल दौड़ रहे थे।

इस समय हम एक ऐसी जगह पहुँचे, जिसके चारों तरफ दूर-दूर तक कपास के खेत थे। मैंने अकस्मात् आगे देखा, तो मुझे जलती हुई आग का एक धुँधला-सा छोटा गोला देख पड़ा। मैं उसी की तरफ ध्यान से देखता रहा। देखते-देखते मुझे ऐसा मालूम हुआ कि वह बड़े वेग से मेरी तरफ आ रहा है। मुझे मालूम हुआ कि वह एक मशाल है, और बराबर आगे को बढ़ रही है। इस पर मैंने अपने साथी, उन दोनों हिंदोस्तानियों से पूछा कि यह जंगमशाल ज्वाला क्या चीज है? मेरे पूछते ही वे लोग भय से बेतरह चिल्लाने और काँपने लगे। उनका दम फूलने लगा। वे चिल्ला उठे—"यह तो बिजली है।" यह दशा देख मेरे आश्चर्य की सीमा न रही। बिजली से उन लोगों का मतलब उसी तालाबवाले

भूत से था। मैं और कुछ कहने भी न पाया था कि वे दोनो कापुरुष भयभीत होकर अपनी-अपनी जान लेकर पीछे को भागे। मैं अकेला रह गया। इस कापुरुषता के लिये मैंने उनको बहुत कोसा। पर कोसने से क्या होता था। मैंने घोड़े के एँड़ मारी, और जिस तरफ़ से वह ज्वाला बढ़ती हुई आ रही थी, उसी तरफ़ को मैं बढ़ा। अब मुझे साफ़-साफ़ देख पड़ने लगा कि वह मशाल एक हिंदोस्तानी हरकारे के हाथ में है। इसलिये जहाँ तक मुझमें ज़ोर था, मैंने हिंदी में आवाज़ दी कि तू वहीं ठहर जा। मैंने इस बात का प्रण कर लिया था कि मैं अपने उन दोनो डरपोक साथियों के निर्मूल भय का कारण ज़रूर मालूम करूँगा। परंतु उस मशालवाले ने मेरे चिल्लाने की कुछ भी परवा न की। वह पूर्ववत् बेतहाशा आगे को दौड़ता हुआ देख पड़ा। इस हुक्मउदूली पर—इस गुस्ताख़ी पर—मुझे बड़ा गुस्सा आया। मैंने घोड़े की बग़ल में ज़ोर से एँड़ मारी, और यह निश्चय किया कि उस गुस्ताख़ मशालवाले को अपने दौड़ते हुए घोड़े से कुचल दूँगा। पर अफ़सोस है, मेरा घोड़ा भी अकस्मात् बिगड़ उठा। उसने अपनी टापें वहीं ज़मीन के भीतर गाड़-सी दीं। वह फुफकारने लगा। पर एक क़दम भी आगे को न बढ़ा। जब मैंने उसे आगे बढ़ने के लिये बहुत तंग किया, तब वह यहाँ तक बिगड़ उठा कि उसने मुझे क़रीब-क़रीब ज़मीन पर पटक देना चाहा। घोड़े का प्रत्येक अंग काँपने

लगा। अब मेरे लिये उतर पड़ने के सिवा और कोई चारा न रहा। इससे मैं उतर पड़ा, और पैदल ही आगे बढ़ा। ज्यों ही मैंने घोड़े की रास छोड़ी, त्यों ही वह भयभीत होकर पीछे को उसी गाँव की तरफ़ भागा, जिसे हम लोगों ने एक घंटे पहले छोड़ा था।

मामला अरा संगीन होता जाता था। न मेरे पास मेरा घोड़ा ही रहा, और न वे दोनो आदमी ही रहे। वक़्त रात का। राह का पता-ठिकाना नहीं। खेतों का बीच। मैंने समझा, इस अवस्था में आगे बढ़ना मुश्किल है। सो, मैंने अपनी रफ़ल उठाकर अपने कंधे पर रक्खी, और ज़ोर से आवाज़ दी—"बे-हिले-डुले ख़ामोश, अपनी जगह पर खड़ा रह; नहीं मैं तुझ पर गोली छोड़ता हूँ।" मुश्किल से मेरे मुँह से ये शब्द निकले होंगे कि मुझे बेतरह चौक मालूम हुआ। इसलिये कि जो आदमी अभी तक मेरी तरफ़ वेग से दौड़ता हुआ आता मालूम होता था, और मुझसे कुछ ही गज़ के फ़ासले पर था, वह आदमी ही न था। वह आदमी की अस्थिमय खोपड़ी-मात्र थी। आँखों की जगह उसमें सिर्फ़ आँखों के गढ़े थे। एक हाथ भी था; पर उसे हाथ नहीं, हाथ की ठठरी कहना चाहिए। उसी से वह मशाल थामे था। उसके शेष अंग धुँधले-धुँधले धुएँ-से मालूम होते थे। उनकी हड्डियाँ भी न देख पड़ती थीं।

मैं वहीं पर ठहरा रहा। मेरी उँगली रफ़ल के घोड़े पर थी।

वह प्रेत उस समय मुझसे सिर्फ १० या १५ फीट पर होगा। अब क्या हुआ कि वह सहसा एक तरफ को मुड़ा, और मुझसे कोई बीस फीट पर, पलक मारते-मारते, जमीन के भीतर घुस गया। वह उस समय मेरे बहुत निकट था। इससे मैं उसे अच्छी तरह देख सका। उसके जमीन में लोप होते ही मैं उस जगह दौड़ गया। पर वहाँ मुझे उसका कुछ भी पता न मिला। मैंने उस जगह जोर से लात मारी। पर वहाँ क्या था ? था सिर्फ मशाल की लाल-लाल जलती हुई आग का कुछ अंश। मैंने उसे हाथ से उठा लिया। पर वह इतना गर्म था कि फ़ौरन् ही मुझे फेक देना पड़ा। यह मैंने इसलिये किया, जिसमें मेरा संशय दूर हो जाय, और इस बात का मुझे विश्वास हो जाय कि सचमुच ही वह मशाल थी या नहीं। खैर, मेरा संशय दूर हो गया, और मेरा हाथ जलने से बचा। इस पर मुझे बड़ा अचंभा हुआ, और मैं पीछे लौटा। मैं कुछ ही दूर लौटा हूँगा कि सौभाग्य से मुझे अपना घोड़ा चरता हुआ मिल गया। मैं प्रसन्न होकर उस पर सवार हुआ, और बहुत पुकारने पर मुझे अपने उन दोनो भगोड़ों का पता लगा। खैर, किसी तरह मैं सूर्य निकलते-निकलते, राम-राम करके, अपने पड़ाव पर पहुँचा।

इस घटना की खबर मेरे पथ-दर्शक ने चारो तरफ फैला दी। उसे सुनकर गाँव का नंबरदार मेरे पास आया। उसने

कहा—"साहब, आपको बिजली ने दर्शन दे दिए। अब आप पर कोई-न-कोई आफ़त आने का डर है।" उसने और मेरे नौकरों ने मुझसे बहुत कुछ कहा-सुना, मेरे बहुत-कुछ हाथ-पैर जोड़े कि मैं वहाँ आस-पास के जंगल में शिकार न खेलूँ। उन्होंने कहा—"साहब, क्या आपको इंजीनियर साहब की बात भूल गई? उन्होंने जिस रात बिजली को देखा था, उसके दूसरे ही दिन उनके तंबू के भीतर घुसकर तेंदुए ने उनको मार डाला। साहब, आप शिकार को न जाइए। शिकार को जाने से कोई-न-कोई संकट आप पर जरूर आवेगा।" उन्होंने यह भी कहा कि एक हिंदोस्तानी ने एक वर्ष पहले इसी तालाब का पानी पिया था। पर फल क्या हुआ? जिस मैदान में बिजली से मेरी भेंट हुई, उसी में वह आदमी मरा हुआ पाया गया। उसके सिर पर जल जाने का एक बड़ा घाव था। मैं उन लोगों के इस अंध-विश्वास पर बहुत हँसा, और शिकार के लिये चल दिया।

एक पखवारा हो गया। मैं एक पहाड़ी गुफा के पास आया। मैंने सुना कि गत रात को दो रीछ वहाँ देख पड़े थे। मैंने कुछ आदमियों को भेजा कि वे हल्ला करके रीछों को अपनी माँद से निकालें। वे उधर गए। इधर मैं इस गुफा के मुँह पर बैठकर रीछों की राह देखने लगा।

सहसा वे दोनो रीछ दौड़ते हुए बाहर निकले। मैंने उनमें से एक पर फ़ैर की। गोली उसे भरपूर लगी। परंतु ज्यों ही

मैंने दूसरी तरफ़ गर्दन फेरी, मैंने आश्चर्य से देखा कि अकस्मात् एक तीसरा रीछ मेरी तरफ़ आ रहा है। उसे देखकर मैं इसलिये ज़रा पीछे हटा कि उसके आघात से बचूँ, और सँभलकर उस पर गोली छोड़ूँ। परंतु ऐसा करने में मेरा पैर फिसल गया, और मैं एक बहुत गहरे गढ़े में जा गिरा। गिरने से मेरा हाथ टूट गया। मेरी कुहनी भी उतर गई, और एक लकड़ी मेरे गाल में घुस गई, जिससे बड़ा भारी घाव हो गया। किसी तरह अपने घाव पर पट्टी बाँधकर हिंदोस्तानियों की मदद से मैं घोड़े पर सवार हुआ, और बड़ी मुश्किलों से अपने ठहरने की जगह पर पहुँचा। वहाँ मैं कई रोज़ तक विषमज्वर और दर्द की यातनाएँ भोगता हुआ पड़ा रहा। जब ज़रा तबियत ठीक हुई, और मैं उठने-बैठने लायक़ हुआ, तब छावनी को आया। वहाँ आकर मैंने डॉक्टर साहब की शरण ली।

मुझे इस बात का पूरा-पूरा विश्वास है कि यदि मैं बिजली को देखकर ज़रा भी डर जाता, अथवा बिजली की खोपड़ी की आँखें और ज़रा नज़दीक से मेरी तरफ़ घूरतीं, अथवा यदि कहीं वह मेरे किसी अंग को छू देती, तो इस घटना का अंतिम फल यही होता कि मैं मौत के मुँह में चला जाता, फिर मेरा बचना सर्वथा असंभव था।

{ जुलाई, १९०९

२०—अद्भुत इंद्रजाल

किसी समय इस देश में इंद्रजाल-विद्या का बड़ा प्राबल्य था। इस विषय के कितने ही ग्रंथ संस्कृत में बन गए थे। उनमें से कई एक अब तक प्रचलित हैं। इस विद्या के बल से ऐंद्रजालिक लोग अद्भुत-अद्भुत माया रचकर प्रेक्षकों को विस्मय में डाल देते थे। कापालिक लोगों का भी इस देश में, किसी समय, बड़ा आधिक्य था। उन्होंने भी अनेक अद्भुत-अद्भुत सिद्धियाँ प्राप्त करके अपना माहात्म्य बढ़ाया था। प्रेतों और पिशाचों को सिद्ध कर लेनेवाले लोग अब तक जहाँ-तहाँ पाए जाते हैं। इस प्रकार के एक पिशाच-सिद्ध महात्मा हमारे जन्म-ग्राम के पास, कुछ दूर पर, गंगा के किनारे, हो गए हैं। इस बात को थोड़े ही दिन हुए। उनके साथी अभी तक विद्यमान हैं। वह मरे हुए मनुष्यों को प्रत्यक्ष दिखला देते थे, यथेच्छ चीज़ों की वर्षा करते थे, दूसरों के चित्त की बात बतला देते थे, और जो चीज़ जहाँ से कहिए, मँगा देते थे। सुनते हैं, आगरे में भी एक मनुष्य ऐसा ही हो गया है। उसका नाम था—'हसनख़ाँ जिन्नी'। लोग कहते हैं, उसे जिन सिद्ध था।

और तरह के सिद्ध तो अब बहुत कम, या बिलकुल ही नहीं, देखने में आते। पर मदारी लोगों की अब भी यहाँ कमी नहीं। ये भी ऐंद्रजालिक हैं। यद्यपि ये लोग यथाशास्त्र इंद्रजाल-विद्या नहीं सीखते, तथापि परंपरा से जो कुछ इनको

मिलता है, उतने ही से ये अनेक आश्चर्य-जनक खेल दिखलाते हैं। पर इनकी भी इंद्रजाल-विद्या का ह्रास हो रहा है। जैसे अलौकिक खेल ये लोग पहले करते थे, वैसे अब कम सुनने में आते हैं।

कुछ समय हुआ, कर्नल स्माइल्स-नामक एक साहब बंगाले में किसी अच्छे पद पर थे। उन्होंने वहाँ इंद्रजाल-विद्या का एक अद्भुत नमूना देखा—इतना अद्भुत कि उसके प्रभाव से उनके एक मित्र की जान तक जाती रही। इस बात को उन्होंने एक अँगरेज़ी मासिक पुस्तक में प्रकाशित किया है। उसी के आधार पर कोचीन से निकलनेवाली केरलकोकिल-नामक मासिक पुस्तक में भी एक लेख निकला है। कर्नल साहब की कहानी अद्भुत-रस से लबालब भरी हुई है। इसलिये हम भी उसे यहाँ पर देते हैं। हम उनके लेख को कहानी इसलिये कहते हैं कि उसके सत्यासत्य का हमारे पास कोई प्रमाण नहीं। पर जिस दृश्य का वर्णन उन्होंने किया है उसका चित्र भी उन्होंने दिया है। अतएव उनकी बात पर विश्वास करने को जी जरूर चाहता है।

अच्छा, तो अब कर्नल स्माइल्स का अद्भुत ऐंद्रजालिक वृत्तांत उन्हीं के मुँह से, थोड़े में, सुनिए—

"जब मैं हिंदोस्तान में था, तब वहाँ मेरा एक हार्दिक मित्र गोरिंग-नामक था। वह भी एक अफ़सर था। वह मुझसे कुछ दूर पर, दूसरी जगह, रहता था; हम दोनो एक ही शहर

गें न थे। पर हम लोग छुट्टियों वग़ैरह में अक्सर मिला करते थे। गोरिंग का विश्वास मंत्रशास्त्री और ऐंद्रजालिक लोगों पर बिलकुल न था। परंतु बंगाले में इन लोगों की बहुत अधिकता थी। कोई गाँव या क़सबा ऐसा न था, जहाँ ये लोग न हों। तथापि जब कभी इस तरह की बातें होती थीं, तब गोरिंग अनेक कुचेष्टाएँ करने लगता था। और सब बातों को झूठ समझकर घंटों हँसी-दिल्लगी किया करता था। मैंने इंद्रजाल के अनेक अद्‌भुत खेल खुद देखे थे। इसलिये इस विद्या पर मेरा पूरा विश्वास था। इसी से गोरिंग की कुचेष्टाएँ मुझे बुरी मालूम होती थीं। मेरी यह उत्कट इच्छा थी कि कोई अच्छा ऐंद्रजालिक मिले, तो मैं उसकी विद्या का प्रभाव गोरिंग को प्रत्यक्ष दिखलाऊँ। परंतु अफ़सोस, गोरिंग ने लंबी छुट्टी ली, और वह विलायत चला गया। अतएव मुझे उसके अविश्वास के खंडन का शीघ्र मौक़ा न मिला।

"छुट्टी पूरी होने पर गोरिंग साहब फिर हिंदोस्तान में तशरीफ़ लाए, और दो-चार दिन बाद मुझसे भेंट करने आए। मैं उनसे बड़े प्रेम से मिला और घंटों बातें करता रहा। हम दोनो बँगले के बरामदे में बैठे हुए प्रेमालाप कर रहे थे कि वहाँ अचानक एक प्रसिद्ध ऐंद्रजालिक—एक मशहूर मदारी—आ पहुँचा। उस आदमी का बंगाले में बड़ा नाम था, मंत्र-विद्या में वह अद्वितीय था। लोग कहते तो ऐसा ही थे। मैं भी उसे एक अलौकिक ऐंद्रजालिक समझता

था। उसके अनेक अद्भुत-अद्भुत खेल मैंने देखे थे। उसे देखकर मैं बहुत खुश हुआ। मैंने कहा कि अब गोरिंग के अविश्वास को दूर करने का मौक़ा आ गया। मैं हिंदोस्तानी बोलने लगा, जिसमें वह मांत्रिक भी मेरी बातचीत समझ सके। मैं उसकी विद्या की प्रशंसा करने लगा और गोरिंग की निंदा। गोरिंग ने उसे सुनाकर बार-बार इस बात पर जोर दिया कि मंत्र-विद्या बिलकुल झूठ है; इंद्रजाल कोई चीज नहीं। अति प्रकृत बातों का होना असंभव है। इस मधुर टीका को वह ऐंद्रजालिक चुपचाप सुनता रहा। उसने अपने मुँह से एक शब्द भी नहीं निकाला।

"उस समय मेरे पास और भी दो-एक आदमी बैठे थे। उनमें से एक और आदमी ने भी इस मशहूर मदारी के खेल देखे थे। वह मेरी तरफ हो गया। उसने मेरा पक्ष लिया। उसने कहा, मैंने इस मनुष्य के किए हुए अद्भुत तमाशे अपनी आँखों देखे हैं। उनमें से एक का वृत्तांत मैं आपको सुनाना भी चाहता हूँ। सुनिए—

'एक दिन इस ऐंद्रजालिक ने खेल शुरू किया। इसके साथ एक लड़का था। उसे बुलाकर इसने पास बिठलाया। फिर इसने सुतली का एक बंडल निकाला। उसका एक सिरा इसने जमीन में भीतर गाड़ दिया। फिर उस बंडल को इसने आकाश की तरफ फेंक दिया। सुतली सीधी आकाश में चली गई, और जाते-जाते लोप हो गई। तब इसने उस

लड़के को हुक्म दिया कि वह उस सुतली पर चढ़कर आकाश की सैर कर आवे। लड़का उस पर चढ़ा। जैसे लोग ताड़ के पेड़ पर चढ़ते हैं, वैसे ही वह उस पर झट-झट चढ़ता गया। धीरे-धीरे उसका आकार छोटा मालूम होने लगा। यहाँ तक कि दूरी के कारण वह कुछ देर में अदृश्य हो गया। तब तक यह मदारी महाशय और खेल खेलने लगे। कोई आध घंटे बाद इसे उस लड़के की याद आई। गोया अभी तक उसकी याद ही न थी। इसने उसे आवाज़ देना शुरू किया। उसे आकाश से नीचे उतारने की इसने बहुत कोशिश की, पर सब व्यर्थ हुई। उस लड़के ने ऊपर ही से जवाब दिया कि अब मैं नीचे नहीं उतरता। यह सुनकर इसे बहुत क्रोध आया। इसने एक छुरा निकाला और उसे अपने दाँतों में दबाया। तब यह भी उस लड़के ही की तरह उस सुतली पर चढ़ने लगा। कुछ देर में छोटा होते-होते यह भी अदृश्य हो गया। दो-चार मिनट बाद आकाश से बड़ी ही करुणा-जनक चिल्लाहट सुनाई पड़ी। ऐसा मालूम होता था, जैसे कोई किसी को मारे डालता है, और वह अपनी जान बचाने की कोशिश कर रहा है। इतने में आकाश से ख़ून की वर्षा शुरू हुई। इससे हम लोगों को निश्चय हो गया कि इसने उस लड़के का ख़ून कर डाला। इसके बाद उस लड़के के हाथ-पैर कट-कटकर, ख़ून से भरे हुए, गिरने लगे। कुछ देर में उसका कटा हुआ सिर भी ज़मीन पर आ गिरा। उसके साथ

ही उसका धड़ भी धड़ाम से नीचे आया। कुछ मिनट बाद यह मांत्रिक भी आकाश से उतरता हुआ देख पड़ा। खून से भरा हुआ छुरा उसके मुँह में था। इस तमाशे को देखकर देखनेवालों के रोंगटे खड़े हो गए, पर इसके लिये गोया यह कोई बात ही न थी। वह धीरे-धीरे नीचे उतरा, और सुतली को ऊपर से खींचकर इसने उसका पूर्ववत् बंडल बनाया। तब इसने उस लड़के के हाथ, पैर, सिर वग़ैरह को इकट्ठा करके एक चादर के नीचे ढक दिया। जब तक इसने खेलने की चीज़ें वग़ैरह अपने पिटारे में रक्खीं, तब तक वह चादर वैसी ही ढकी रही। जब इसे और कामों से फ़ुरसत मिली, तब इसने उस चादर को एक झटके से ऊपर खींच लिया। चादर खींचते ही वह लड़का हँसता हुआ उसके भीतर से निकल आया। उसके बदन पर खून का ज़रा भी निशान न था। यह तमाशा देखकर सब लोग दंग हो गए।'

यहाँ पर हम यह कह देना चाहते हैं कि इस तरह के खेल का हाल लोगों ने अक्सर सुना होगा; क्योंकि अब तक, सुनते हैं, इस तरह के खेल होते हैं। पर स्माइल्स साहब कहते हैं कि उनके मित्र गोरिंग को इस पर विश्वास नहीं आया। उसने यह बात हँसी में उड़ा दी। अब स्माइल्स से कहानी सुनिए—

"अब यह ठहरी कि गोरिंग का अविश्वास दूर करने के लिये उसे कोई अद्भुत खेल दिखाया जाय। उस ऐंद्रजालिक

ने हमारी बात क़बूल कर ली। हमने उससे कहा कि कल तुम मेजर साहब के बँगले पर तीसरे पहर आओ, और गोरिंग को अपनी विद्या दिखलाओ। उसने कहा—हुज़ूर के सामने जो कुछ सेवा बन पड़ेगी, करूँगा। बस, इतना ही कहकर उसने हम सबको बड़े अदब से सलाम किया, और वहाँ से वह चलता हुआ।

"दूसरे दिन यथासमय हम लोग मेजर साहब के बँगले पर इकट्ठे हुए। गोरिंग के सिवा और भी कई आदमी वहाँ थे। एक इंजीनियर भी तमाशा देखने के लिये आया था। वह भी मेरा मित्र था। उसका नाम था अर्मिन। वह अपने साथ तसवीर उतारने का एक छोटा-सा केमरा भी ले आया था। केमरा इतना छोटा था कि उसके पाकट में आ जाता था। कुछ देर में हम लोगों ने दो आदमियों को, मैले-कुचैले कपड़े पहने हुए, कुछ दूर पर, एक पेड़ के नीचे देखा। यह वही कल का ऐंद्रजालिक और उसका एक साथी था। हम लोगों ने उनको अपने पास बुलाया। वे आए। उनके पास था क्या? सिर्फ एक पिटारी, दो-एक छोटे-छोटे डिब्बे और फटे पुराने कपड़ों और चीथड़ों की एक गठरी! बस।

"मेजर साहब की आज्ञा मिलते ही खेल शुरू हुआ। मदारी मियाँ बंगाली थे। उम्र उसकी कोई ६० वर्ष के क़रीब होगी। उसने अपनी पिटारी में हाथ डाला और उसके भीतर से एक काला नाग बाहर निकाला। निकलते ही उसने अपना

फन उठाया और फुफकार मारते हुए उसे इधर-उधर हिलाना शुरू किया। दूसरा आदमी उसके सामने मौहर (तूँबी) बजाने लगा। तब वह सर्प अपना फन और भी अधिक लहराने लगा। जैसे-जैसे मदारी महाशय के मनोहर वाद्य का सुर चढ़ने लगा, वैसे-ही-वैसे सर्प की फणा भी ऊँची होने लगी। यहाँ तक कि कुछ देर में यह मालूम होने लगा कि वह हवा में निराधार हिल रही है। उसका रंग अत्यंत काला था। फणा बहुत ही तेजस्क थी। जान पड़ता था कि फन पर देदीप्यमान रत्न जड़े हुए हैं। जब खेल इस अवस्था को पहुँचा, तब जर्मिन ने उस दृश्य का एक फोटो लिया। कैमरा के बटन की आवाज आई, और प्लेट ने छाया ग्रहण कर ली। यद्यपि मैं तमाशे में तन्मनस्क था, तथापि मैंने प्लेट का गिरना सुन लिया।

"अब एक विलक्षण—महा विलक्षण—बात हुई। तमाशे में एक अद्भुत परिवर्तन हुआ। परंतु कब हुआ, यह हम लोगों ने नहीं देख पाया। स्वच्छ आकाश सहसा काला हो गया। प्रकाशवती दिशाओं ने श्यामलता धारण की। सब तरफ बादल-से घिर आए। इतने में उस सर्प की फणा ने स्त्री का रूप धारण किया, और उस रूप में वह पूर्ववत् आकाश में नृत्य करने लगी। मदारी अपनी मौहर को बजा रहा था। पर जान पड़ता था कि वह हम लोगों से कुछ दूर पर बजा रहा है। था वह पास ही; पर सुर में अंतर हो गया था।

"कुछ देर में वाद्य बंद हुआ। परंतु वह सर्पिणी नारी अपने कृष्ण-मणिमय रत्नों के प्रकाश में नाचती ही रही। इतने में उसने अपना रूप बदल डाला। वह दिव्य-रूप हो गई। उसके मुख-मंडल पर अप्रतिम प्रभा छा गई। उसने अपने विशाल नेत्रों से हम लोगों की तरफ़ निर्निमेष-भाव से देखना शुरू किया। हम लोग उसके अद्भुत रूप को देखकर दंग हो गए। वैसा रूप हमने कभी पहले नहीं देखा था। और न अब आगे कभी देखने की संभावना ही है। उसके निरुपम रूप, उसके त्रिभुवन-जयी नेत्र और उसके मोहक लावण्य ने हम लोगों को बेहोश-सा कर दिया। हमारी चित्तवृत्ति उसी के मुख-मंडल में जाकर प्रविष्ट हो गई; शरीर-मात्र से हम लोग अपनी-अपनी जगह पर बैठे रह गए। गोरिंग की दशा भयंकर हो गई; क्योंकि उस दिव्य नारी की नज़र सबसे अधिक उसी की तरफ़ थी।

"हम सब बँगले के बरामदे में थे। खेल कुछ दूर नीचे हो रहा था। वह स्त्री नाचते-नाचते क्रमशः आगे बढ़ी, और थोड़ी देर में बरामदे की सीढ़ियों के पास आ गई। जब वह इतना पास आ गई, तब गोरिंग की अजीब हालत हो गई। वह बेतरह भयभीत हुआ-सा जान पड़ने लगा। मालूम होता था कि उसे आनंद भी हो रहा है और भय भी हो रहा है। कुछ मिनट बाद उसने बहुत धीरे-से दो-चार शब्द कहे। पर उसने क्या कहा, हम लोगों ने नहीं समझा। इतने में उसने

अपने दोनो हाथ फैलाए, और उठकर उस नाग-बाला को वह आलिंगन करने चला। उसका मुँह पीला पड़ गया था, और आँखें लाल हो गई थीं। उसे इस प्रकार अपनी तरफ आते देख नाग-कन्या ने भी अपने बाहुपाश को आगे बढ़ाकर गोरिंग को उससे बाँधना चाहा। परंतु हुआ क्या? इस तरह दोनो तरफ से आलिंगन और प्रत्यालिंगन का उपक्रम होते ही वह कन्या वहाँ की वहीं अंतर्हित हो गई!

"हम लोग होश में आए। ऐसा जान पड़ा, मानो हम सब कोई भयंकर स्वप्न देख रहे थे। जब तक खेल होता रहा, जर्मिन को छोड़कर किसी के होश-हवास ठिकाने नहीं रहे। जर्मिन ने दो-एक फ़ोटो उस खेल के लिए। खेल समाप्त होते ही उसने अपना कैमरा नीचे रक्खा, और सोडावाटर वग़ैरह माँगा। उस समय उसके हाथ काँप रहे थे। गोरिंग कुछ नहीं बोला। आलिंगन के नैराश्य ने उसे पागल-सा कर दिया। वह अपनी कुर्सी पर बैठ गया, और जिस जगह वह स्त्री अदृश्य हुई थी, उसी तरफ टकटकी लगाकर देखने लगा। इतने में वह ऐंद्रजालिक अपना सब सामान इकट्ठा करके जाने को तैयार हुआ। उसे मेजर साहब ने कुछ रुपए देकर बिदा किया। जब वह चलने लगा, तब उसने गोरिंग की तरफ देखकर कहा—'साहब, अब भी होश में आइए।'

"पर गोरिंग ने कुछ जवाब नहीं दिया। काठ का-सा पुतला वह पूर्ववत् उस जगह की तरफ टकटकी लगाए देखता रहा।

जर्जिन ने पकड़कर उसे हिलाया; पर वह अचल रहा। यह हालत देखकर हम लोग घबरा गए। हम सबने बल-पूर्वक उसे उठाने की कोशिश की, पर हमारी कोशिश व्यर्थ हुई। वह वहाँ से नहीं हिला। तब हम लोगों ने उसकी छाती पर ब्रांडी के छींटे मारे। इस पर वह होश में आया, और सन्निपात-ग्रस्त आदमी की तरह, न-जाने क्या, बर्राने लगा। हम लोगों ने उसे उठाकर बँगले के भीतर लिटाया। हमने उसके कपड़े ढीले कर दिए और सिर के ऊपर पानी की धारा छोड़ी। तब वह बेतरह घबरा उठा, और आश्चर्य-चकित-सा होकर उठ बैठा। चारो तरफ़ देखकर उसने एक अजब सुर में कहा—वह कहाँ है? हम सबने उसे बहुत समझाया। हमने कहा, तुम क्या पागल हो गए हो? वह सब इंद्रजाल था; वह सब भ्रम था। परंतु उसने हमारी एक भी बात न सुनी। मैं उसके पास जाना चाहता हूँ; मैं वहाँ ज़रूर जाऊँगा; वह गई कहाँ? इस तरह गोरिंग बकने लगा। यह दशा देखकर मेजर ने डॉक्टर को बुलाया। जर्मिन तो फ़ोटो की प्लेटें तैयार करने में लगा, और हम लोग गोरिंग को समझाने में। वह बार-बार उठकर भागने की कोशिश करता और हम लोग बार-बार पकड़कर उसे रोक रखते। इतने में डॉक्टर आया। उसे देख गोरिंग बहुत बिगड़ा। उसने मुझे एक लात मारी। डॉक्टर ने कहा, इसे उन्माद हुआ है। उसने गोरिंग का दस्ताना फाड़कर पिच-कारी से एक औषध उसके हाथ में प्रविष्ट कर दी।

"गोरिंग को हम लोगों ने किसी तरह बिछौने पर लिटाया। लेटे-लेटे वह फिर प्रलाप करने लगा। वह कहाँ गई, वह मुझे बहुत पसंद है, मैं उसके पास जाना चाहता हूँ। इस तरह वह कुछ देर तक बकता रहा। इसके बाद वह कुछ शांत हुआ। पर उसका शांत भाव बहुत देर तक नहीं ठहरा। वह फिर बर्राने लगा, और पूछने लगा—वह ऐंद्रजालिक किस रास्ते से गया? मैं उससे मिलना चाहता हूँ। इस पर हम लोगों ने फिर उसे समझाना और दिलासा देना शुरू किया। हमने कहा, वह स्त्री न थी; केवल भ्रम था। तुम मूर्खता की बातें मत करो। झूठे खेल को देखकर कोई देखी गई चीज को सच नहीं मान लेता। न कोई स्त्री थी, न कोई सर्प था। वह सारा खेल सिर्फ माया थी। अतएव उस स्त्री के लिये तुमको दीवाना न होना चाहिए। इस तरह बहुत कुछ कह-सुनकर हम लोगों ने गोरिंग को फिर शांत किया, और वह निश्चेष्ट-सा होकर बिछौने पर लेट गया।

"इसके बाद जर्मिन ने जो फ़ोटो लिए थे, उनकी प्लेटें हम लोग देखने लगे। उसने तीन फ़ोटो लिए थे। एक उस समय का, जिस समय उस ऐंद्रजालिक ने अपने पिटारे से साँप निकाला था; दूसरा उस समय का, जिस समय वह साँप स्त्री हो गया था; और तीसरा उस समय का, जिस समय गोरिंग उस स्त्री को आलिंगन करने दौड़ा था। हम लोगों ने 'निगेटिव' उजेले की तरफ़ को करके देखे, तो सारा दृश्य स्पष्ट देख पड़ा। सर्प,

की, गोरिंग इत्यादि के छाया-चित्र उन पर साफ़ उठ आए थे। यह देखकर हम लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। यदि वह सारा तमाशा भ्रम था, तो उसके चित्र कैसे ?

"रात होते ही और लोग तो अपने-अपने घर गए; मैं और मेजर साहब बँगले में गोरिंग की देख-भाल के लिये जागते रहे। मैंने कहा, मैं कुछ देर सो लूँ। तब तक मेजर साहब गोरिंग के पास बैठें। फिर मैं पहरे पर रहूँगा, और मेजर साहब को सोने के लिये छुट्टी दूँगा। मैं बाहर आकर सो गया। कोई १ बजने का वक़्त था कि मेजर साहब घबराए हुए मेरे पास आए। उन्होंने कहा कि मैं ज़रा सो गया और उतने में गोरिंग कहीं चला गया !

"हम लोग गोरिंग को ढूँढ़ने निकले। मेजर साहब एक तरफ़ गए और मैं दूसरी तरफ़। बँगले के पास ही एक बाग़ था। थोड़ी देर में उसी तरफ़ से बंदूक़ की आवाज़ आई। मैं वहाँ दौड़ा गया। मैंने देखा कि मेजर साहब की गोद में गतप्राण गोरिंग पड़ा हुआ है। उसकी गर्दन में सर्प-दंश के कई घाव हैं। पास ही मेजर की गोली से मरा हुआ एक भयंकर साँप भी पड़ा है। यह हृदय-द्रावक दृश्य देखकर मैं काँप उठा। अपने मित्र गोरिंग की ऐसी शोचनीय मृत्यु पर मुझे बेहद रंज हुआ। पर लाचारी थी। भवितव्यता बड़ी प्रबल होती है !"

{ जनवरी, १६०६

२१—प्राचीन मेक्सिको में नरमेध-यज्ञ

प्रेस्काट नाम के साहब ने अमेरिका के मेक्सिको-देश के विजय किए जाने पर एक अच्छी पुस्तक अँगरेज़ी में लिखी है। उसी के आधार पर हम प्राचीन मेक्सिको के इन उत्सवों का हाल लिखते हैं, जिनमें वहाँवाले नरमेध-यज्ञ करते थे।

मेक्सिकोवालों के युद्ध-देवताओं में एक देवता 'टैज़-कैटली-कोपा' नाम का था। 'टैज़्-कैटली-कोपा' का अर्थ है—'संसार की आत्मा।' वह संसार का रचयिता माना जाता था। उसकी पूजा में मनुष्य का बलिदान होता था। प्राचीन काल में, मेक्सिको में, मनुष्य के बलिदान की प्रथा थी तो; परंतु बहुत कम थी। चौदहवीं शताब्दी में उसने बहुत ज़ोर पकड़ा; और अंत में, सोलहवीं शताब्दी में, जब स्पेनवालों ने मेक्सिको पर अपना अधिकार जमाया, तब इस प्रथा का इतना प्राबल्य हो गया कि कोई पूजा इसके बिना होती ही न थी।

युद्ध में पकड़े गए क़ैदियों में से एक सुंदर युवक चुन लिया जाता था। वह टैज़्-कैटली-कोपा का अवतार माना जाता था। उसका आदर और सत्कार भी वैसा ही होता था, जैसा टैज़् कैटली-कोपा की मूर्ति का। कई पुजारी उसके पास सदा रहते थे। वह बहुमूल्य और सुंदर-सुवासित वस्त्र धारण करता। फूलों की मालाएँ उसके गले में पड़ी रहतीं।

जब वह घूमने निकलता, तब राजा के सिपाही उसके आगे-आगे चलते। चलते-चलते जब वह कहीं गाने लगता, तब उसके गाने की ध्वनि कानों में पड़ते ही लोग दौड़-दौड़कर उसके चरणों पर गिरते, और उसकी चरण-रज उठाकर सिर पर धारण करते। चार सुंदर युवा स्त्रियाँ सदा उसकी सेवा करतीं। जिस समय से वे उसके पास रहने लगतीं, उस समय से लोग उन्हें देवी के पवित्र नाम से पुकारने लगते। एक वर्ष तक यह देवता खूब सुख भोगता। जहाँ जाता, वहाँ लोग उसका आदर करते और उसे खूब अच्छा भोजन खिलाते। वह जो चाहता, सो करता; कोई उसे टोकनेवाला न था। वह एक बड़े भारी महल में रहता। जब जी चाहता, तब चाहे जिसके महल को अपने रहने के लिये खाली करा लेता। परंतु एक वर्ष के बाद उसका यह सब सुख मिट्टी में मिल जाता।

बलिदान के दिन उसके सब बहुमूल्य कपड़े उतार लिए जाते। पुजारी लोग उसे टेज-कैटली-कोपा के मंदिर में ले जाते। दर्शकों की भीड़ उसके पीछे-पीछे चलती। मंदिर के निकट पहुँचते ही वह अपने फूलों के हारों को तोड़-तोड़कर भूमि पर बखेरने लगता। अंत में उन सारंगियों और ढोलकों के तोड़ने की बारी आती, जो उसकी रँगरेलियों के साथी थे। मंदिर में पहुँचते ही छ पुजारी उसका स्वागत करते। इन

छहों-पुजारियों के बाल लंबे-लंबे और काले होते। वे कपड़े भी काले ही पहने रहते। उनके कपड़ों पर मेक्सिको की भाषा मे लिखे हुए मंत्राक्षर चमकते रहते। छहो पुजारी उसे लेकर मंदिर के एक ऐसे ऊँचे भाग में पहुँचते, जहाँ उन्हें नीचे से सर्व-साधारण अच्छी तरह देख सकते। वहाँ पर उसे एक शिला पर लिटा देते। पुजारियों में से पाँच तो उसके हाथ-पैर जोर से पकड़ लेते और एक उसके पेट में छुरा भोंक देता और तुरंत ही उसका हृदय बाहर निकाल लेता, जिसे पहले तो वह सूर्य को दिखाता और फिर टेज-कैटली-कोपा की मूर्ति के चरणों पर डाल देता। देवता के चरणों पर हृदय-खंड के गिरते ही नीचे खड़े हुए सारे दर्शक झुक-झुककर देवता की वंदना करने लगते। तत्पश्चात् एक पुजारी उठता और लोगों को संसार की निस्सारता पर उपदेश देने लगता। अंत में वह कहता—'भाइयो, देखो, दुनिया कैसी बुरी जगह है। पहले तो सांसारिक बातों से बड़ा सुख मिलता है, जैसे कि इस मनुष्य को मिला था, जो अभी मारा गया है, परंतु अंत में उनसे बड़ा दुःख होता है, जैसा कि इस आदमी को हुआ। सांसारिक सुखों पर कभी भरोसा मत करो, और न उन पर गर्व ही करो।'

यह तो इस बलिदान की साधारण रीति थी। बलिदान किए जानेवाले व्यक्ति को बलिदान के समय प्रायः बहुत शारीरिक कष्ट भी पहुँचाया जाता था। उसे लोग शिला पर बिठा

देते थे, और खूब पीटते थे। लातों और घूसों तक ही बात न रहती; लोग तीर और छुरे तक उसके शरीर में चुभोते थे। उसका शरीर लोहू से लथफथ हो जाता, और अंत में वह इस यंत्रणा से विह्वल होकर पुजारियों से प्रार्थना करने लगता कि शीघ्र ही मेरे प्राण ले लो। बलिदान के लिये चुने गए व्यक्ति के साथियों में से यदि कोई सेना-पति या प्रसिद्ध वीर पुरुष होता, तो उस व्यक्ति के साथ थोड़ी-सी रियायत भी की जाती थी। उसके हाथ में एक ढाल और तलवार दे दी जाती थी। वह उपस्थित लोगों में से एक-एक से लड़ता। यदि वह जीत जाता, तो उसे अपने घर जीवित चले जाने की आज्ञा मिल जाती। हार जानेपर—चाहे वह एक दर्जन आदमियों को हराकर ही हारता—उसकी वही गति होती, जो और लोगों की होती थी। जब इस प्रकार का युद्ध होता, तब बलिदान के स्थान में एक गोल पत्थर रख दिया जाता। उसी के चारो ओर घूम घूमकर बलिदान किया जानेवाला पुरुष लड़ता और दर्शक नीचे खड़े होकर युद्ध देखते।

मेक्सिकोवाले इन नरमेध-यज्ञों को अपने मनोरंजनार्थ न करते थे। उनकी धार्मिक पुस्तकों में इस प्रकार के यज्ञों का बड़ा माहात्म्य गाया गया है। समय आने पर बलिदानों का न होना अशुभ समझा जाता था। कभी-कभी स्त्रियाँ भी बलिदान होती थीं। जब पानी न बरसता, तब छोटे-छोटे

बच्चे देवतों की भेंट चढ़ाए जाते। पहले इन बच्चों को अच्छे-अच्छे कपड़े पहनाए जाते। फिर उन्हें एक बहुमूल्य चादर पर लिटाया जाता। इस चादर को पुजारी लोग तान-कर उठाए हुए मंदिर में ले जाते। आगे बाजे बजते जाते, पीछे दर्शकों की भीड़ चलती। मंदिर में पहुँचकर बच्चों के गले में मालाएँ पहनाई जातीं, और उनसे कहा जाता कि लो, अब तुम मारे जाते हो। वे बेचारे रोने लगते, परंतु पुजारियों का कठोर हृदय न पसीजता। वे लोग उनके उस समय के रोने को शुभ समझते। बच्चे मार दिए जाते, और लोग समझते कि अब पानी अवश्य बरसेगा। पुजारी लोग बलिदान के लिये बच्चों को पहले ही से ख़रीद लेते थे। जिस बच्चे को कोई पुजारी बलिदान के लिये ख़रीदना चाहता, उसके बेचने में उसके माता-पिता को कुछ भी उज़्र न होता। वे उलटा अपने को बड़ा भाग्यवान समझते।

इस प्रकार बलिदान कर दिए जानेवाले मनुष्यों की संख्या भी थोड़ी न होती थी। मेक्सिको-देश में ही एक वर्ष में बीस-बीस हज़ार आदमी इस प्रथा की भेंट हो जाते थे। कभी-कभी तो यह संख्या पचास-पचास हज़ार तक पहुँच जाती थी। फिर यदि कहीं किसी वर्ष राजतिलकोत्सव हुआ, अथवा किसी मंदिर की प्रतिष्ठा हुई, तो फिर क्या कहना है। यह संख्या लाखों तक पहुँच जाती थी। १४८६ ईस्वी में मेक्सिको के एक नगर में, एक मंदिर की प्रतिष्ठा हुई थी। वर्षों

पहले से उसकी प्रतिष्ठा की तैयारी होती रही। दूर-दूर से लोग उसमें बलिदान किए जाने के लिये पकड़ मँगाए गए। जिस दिन इस मंदिर की प्रतिष्ठा हुई, ये लोग दुहरी पंक्ति में दो मील तक बिठाए गए। कई रात और दिन तक इनकी क़ुरबानी होती रही। एक-एक दिन में सत्तर-सत्तर हज़ार मनुष्य मारे गए। लोग कदाचित् इतने आदमियों के, उँगली तक हिलाए बिना, मारे जाने की बात पर विश्वास न करें। परंतु इस बात की सत्यता के प्रमाण केवल उन्हीं पाश्चात्य विद्वानों के लेखों से नहीं मिलते, जिन्होंने मेक्सिको की बातों की खोज करके ऐतिहासिक पुस्तकें लिखी हैं, किंतु मेक्सिको के आदिम निवासी तक इस बात की गवाही देते हैं। इसके अतिरिक्त वह मंदिर, जिसमें यह महानरमेध-यज्ञ हुआ था, उस समय भी विद्यमान था, जब स्पेनवालों ने मेक्सिको को अपने हस्तगत किया था। जिन लोगों का बलिदान होता था, उनकी खोपड़ियाँ मंदिर की दीवारों पर खूँटियों से लटका दी जाती थीं। उस मंदिर में स्पेनवालों को बहुत-सी खोपड़ियाँ लटकी मिली थीं। स्पेन के दो सैनिकों ने उन्हें गिना भी था। कहते हैं कि उनकी संख्या एक लाख छत्तीस हज़ार से अधिक थी। इन आदमियों के इस प्रकार, हाथ-पैर हिलाए बिना, मर जाने का एक बड़ा भारी कारण भी था। वह यह कि उन लोगों को दृढ़ विश्वास था कि इस प्रकार की मृत्यु बहुत अच्छी होती है, और मरने के

बाद हमें स्वर्ग और उसके सुख प्राप्त होंगे। इसी से वे अपना बलिदान कराकर बड़ी ख़ुशी से मरते थे।

मेक्सिकोवाले हर साल अपने आस-पास के देशों पर चढ़ाई करते थे। दिग्विजय के लिये नहीं, केवल बलिदान के लिये दूसरे देशों के आदमियों को पकड़ लाने के लिये। मेक्सिको के पास टैक्सकीला नाम का एक राज्य था। मेक्सिको के राजा और वहाँ के राजा में यह अहदनामा हो गया था कि साल में एक ख़ास दिन, एक नियत स्थान पर, दोनो राज्यों की सेनाएँ एक दूसरी से लड़ें। हार-जीत की कोई शर्त न थी। बात थी केवल इतनी ही कि बलिदान के लिये एक पक्ष दूसरे पक्ष के जितने आदमी जबरदस्ती क़ैद कर सके, कर ले जाय। नौबत हाथा-पाई तक ही न रहती, मार-काट अवश्य होने लगती। संध्या को लड़ाई बंद हो जाती। उस समय दोनो पक्षवाले एक दूसरे से मित्रों की तरह मिलते, परंतु युद्ध के क़ैदियों की कुछ बात न होती। इन्हीं क़ैदियों का एक-एक करके बलिदान किया जाता। जब उनकी संख्या थोड़ी रह जाती, तब लोग राजा से फिर इसी प्रकार के युद्ध की आज्ञा माँगते।

मेक्सिकोवाले नर-मांस-भक्षी भी थे। बलिदान के बाद लाश उस आदमी को दे दी जाती थी, जो उसे युद्ध से पकड़ लाता था। वह उसे बड़ी प्रसन्नता से अपने घर उठा लाता और बड़े यत्न से पकाता। तब उसके बंधु-बांधव और

मित्र एकत्र होते। सब लोग खूब खुशी मनाते, और अंत में वे सब मिलकर नम नर-मांस को बड़ी प्रसन्नता से खाते।

कुछ वीर पुरुष अपने ही मन से अपने को बलिदान के लिये अर्पण कर देते थे। इन लोगों की खोपड़ियों की माला मेक्सिको का बादशाह बड़े प्रेम से पहनकर दरबार या त्योहार के दिन तख्त पर बैठता था।

{ जनवरी, १९१२